एल्युमिनाई मीट 2026 के अवसर पर प्राचार्य द्वारा प्रबंधक का स्वागत

रक्तदान शिविर

टी.ए. वर्ष 2026 के सफल छात्र

छात्र/छात्राओं का शैक्षिक भ्रमण

21 जून 2026 योग शिविर

महाविद्यालय के पूर्व छात्र

शिक्षा समिति के सदस्य डा. आर.बी.एस. रावत का भ्रमण

वर्ष 04 – अंक – 04 जुलाई 2026 RNI-UPHIN/2023/87299

आत्मनिर्भर कृषि

वार्षिक पत्रिका

चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय

(नैक द्वारा प्रदत्य 'बी' ग्रेड)

बख्शी का तालाब, लखनऊ – 226201 / फोन : 05212–298223
(लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ से सहयुक्त)
www.cbgagcollege.org infocbgl@gmail.com

प्रति मूल्य रू. : 10/-

श्रद्धेय भगवती सिंह

(26.8.1933–04.4.2021)

पूर्व मंत्री- आवास, नगर विकास, आबकारी, सूचना, मद्यनिषेध, खेलकूद, युवा कल्याण, प्रान्तीय रक्षक दल, वन, जन्तु उद्यान वाह्य सहायतित परियोजना एवं नेता सदन विधान परिषद उ.प्र. तथा महोना क्षेत्र लखनऊ से दो बार विधायक एवं दो बार विधान परिषद सदस्य व सांसद- राज्यसभा

एवं

संस्थापक – चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बख्शी का तालाब, लखनऊ

चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय की प्रमुख विशेषताएं

1. लखनऊ विश्वविद्यालय से सम्बद्ध एवं नैक द्वारा प्रत्यायित ग्रेड बी प्राप्त एक उच्च कोटि का कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय।
2. बी.एससी. (कृषि) व एम.एससी. (कृषि) उद्यान विज्ञान, कृषि प्रसार, सस्य विज्ञान तथा कृषि रसायन एवं मृदा विज्ञान एवं बी.एससी. (जीव विज्ञान व गणित वर्ग) एवं बी.कॉम. के पाठ्यक्रम संचालित।
3. लखनऊ के एतिहासिक स्थल,बख्शी का तालाब, सीतापुर रोड पर शांत एवं प्रदूषण मुक्त वातावरण में स्थित।
4. सम्पूर्ण शैक्षिक सुविधाओं से सुसज्जित प्रयोगशालाएं।
5. आधुनिक सुविधाओं से युक्त छात्रावास।
6. खेलकूद व व्यायामशाला (जिमनेजियम) की आधुनिक व्यवस्था।
7. कृषि प्रयोगात्मक कार्य हेतु आदर्श कृषि प्रक्षेत्र पर डेयरी फार्म, वर्मीकम्पोस्ट यूनिट, बकरी पालन तथा मधुमक्खी पालन यूनिट।
8. विगत वर्षों में निरन्तर लखनऊ विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में महाविद्यालय के छात्रों द्वारा उच्च स्थान प्राप्त किया।
9. राष्ट्रीय एवं बहु–राष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा महाविद्यालय के 42% छात्रों का परिसर चयन।
10. ज्ञानार्जन हेतु छात्र/छात्राओं का नियमित शैक्षिक भ्रमण।
11. किसानों को उन्नत खेती की जागरूकता के लिये प्रदर्शनी एवं संगोष्ठी द्वारा प्रचार–प्रसार।
12. रावे एवं एन.एस.एस के माध्यम से छात्रों को ग्रामीण कृषि कार्य का अनुभव प्रदान कराना।
13. योग्यताक्रम में बी.एससी. (कृषि) के 10 छात्रों तथा एम.एससी. (कृषि) के 05 छात्रों को मण्डी परिषद द्वारा प्रतिवर्ष प्रति छात्र क्रमशः रू. 36,000/– की दर से छात्रवृत्ति।
14. स्मार्ट बोर्ड के माध्यम से हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनो भाषाओं में शिक्षण कार्य का संचालन।
15. नि:शुल्क प्रतियोगी परिक्षाओं की कोचिंग व्यवस्था।
16. स्नातकोत्तर विषयों में शोधकार्य (थीसिस)।

अधिक जानकारी के लिए महाविद्यालय की निम्न वेवसाईट पर जाय...
Website : www.cbgagcollege.org

संरक्षक

डा0 फिदा हुसैन अंसारी (अध्यक्ष, प्रबन्ध समिति)
मा0 श्री महेन्द्र सिंह 'झीन बाबू' (अध्यक्ष शिक्षा समिति)
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बख्शी का तालाब, लखनऊ

सम्पादकीय सलाहकार

डा0 टी0पी0 सिंह (प्रबन्धक)
श्री राजेन्द्र प्रताप सिंह (एडवोकेट)

सदस्यगण

डा0 सत्येन्द्र कुमार सिंह, सह-प्राध्यापक
डा0 सुधीर कुमार सिंह रघुवंशी, सह-प्राध्यापक
डा0 हृदय नारायण तिवारी, सह-प्राध्यापक
डा0 प्रमोद कुमार मिश्रा, सहा0 प्राध्यापक
डा0 कमलाकान्त, सहा0 प्राध्यापक
इंजी0 विपुल अग्रवाल, सहा0 प्राध्यापक
डा0 गुरप्रीत सिंह, सहा0 प्राध्यापक
डा0 रवि शंकर वर्मा, सहा0 प्राध्यापक
डा0 आशुतोष कुमार श्रीवास्तव, सहा0 प्राध्यापक
डा0 जशकरन सिंह, सहा0 प्राध्यापक
डा0 अरविन्द कुमार मिश्रा, सहा0 प्राध्यापक
डा0 सुधाकर सिंह, सहा0 प्राध्यापक
डा0 ऊरूज आलम सिद्दीकी, सहा0 प्राध्यापक
डा0 राजीव कृष्ण बाजपेयी, तकनीकी सलाहकार

सम्पादक

डा0 योगेन्द्र कुमार सिंह
सह-प्राध्यापक

स्वामी : चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्रकाशक एवं मुद्रक श्री धीरेन्द्र प्रताप सिंह द्वारा वी.जी. ऑफसेट 109/96 मॉडल हाउस, कैसरबाग लखनऊ (उ.प्र.) से मुद्रित एवं चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बख्शी का तालाब, लखनऊ-226201 (उ.प्र.) से प्रकाशित, Email : infocbgl@gmail.com

सम्पादक : डा0 योगेन्द्र कुमार सिंह

समस्त वादो के लिये लखनऊ न्यायालय मान्य है।

डा0 फिदा हुसैन अंसारी
अध्यक्ष–प्रबन्ध समिति

अध्यक्ष जी की कलम से

ड्रोन तकनीक एवं भारतीय कृषि

कृषि में ड्रोन तकनीक (Agriculture Drone) एक क्रांतिकारी कदम है। यह मानव रहित हवाई वाहन (UAV) होते हैं जो फसलों की निगरानी, उर्वरकों और कीटनाशकों के सटीक छिड़काव (Spraying) में मदद करते हैं, जिससे किसानों का समय और पैसा दोनों बचते हैं।

ड्रोन में रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों के लिए टैंक लगे होते हैं, जिनसे फसलों पर बहुत कम समय में समान रूप से छिड़काव किया जा सकता है। खेतों और मिट्‌टी का सर्वेक्षण करके यह पता लगाया जा सकता है कि किन हिस्सों में पानी या पोषक तत्वों की कमी है। एक एकड़ भूमि में छिड़काव करने में पारंपरिक तरीकों की तुलना में ड्रोन केवल 15 से 20 मिनट का समय लेता है और यह एक दिन में लगभग 30–40 एकड़ खेत में काम कर सकता है।

(फिदा हुसैन अंसारी)
अध्यक्ष–प्रबन्ध समिति

दूरभाष : 05212-298223

चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय

बख्शी का तालाब, लखनऊ – 226201
(शिक्षा समिति, लखनऊ द्वारा संचालित एवं लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ से सहयुक्त)
Webiste : www.cbgagcollege.org E-mail : infocbgl@gmail.com

पत्रांक : च.भा.गु.कृ.म.वि./ मेमो / 2026–27 दिनांक : 20.7.2026

डा0 टी.पी. सिंह
पूर्व निदेशक
बलरामपुर अस्पताल लखनऊ
एवं प्रबन्धक – प्रबन्ध समिति

प्राक्कथन

मुझे यह कहते हुए बहुत ही हर्ष की अनुभूति हो रही है कि महाविद्यालय की वार्षिक कृषि पत्रिका **'आत्मनिर्भर कृषि'** का आगामी प्रकाशन प्रकाशित होने जा रहा है, यह पत्रिका किसानों के बीच उनके लिए खेती की नई–नई कृषि तकनीकों एवं कृषि से सम्बन्धित अन्य विषयों पर कृषि विशेषज्ञो द्वारा बतायी गई वैज्ञानिक विधियों की जानकारी प्रदान करेगी। नई तकनीक से फसलों का उत्पादन बढ़ेगा और किसानों की आय दोगुनी करने में मददगार सिद्ध होगी।

पत्रिका की सफलता के लिये हार्दिक शुभकामनायें ।

(टी.पी. सिंह)
पूर्व निदेशक
बलरामपुर अस्पताल लखनऊ
एवं प्रबन्धक – प्रबन्ध समिति

दूरभाष : 05212-298223

चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय

बख्शी का तालाब, लखनऊ - 226201

(शिक्षा समिति, लखनऊ द्वारा संचालित एवं लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ से सहयुक्त)

Webiste : www.cbgagcollege.org   E-mail : infocbgl@gmail.com

पत्रांक : च.भा.गु.कृ.म.वि./ मेमो / 2026–27

दिनांक : 20.7.2026

डा. योगेन्द्र कुमार सिंह
प्राचार्य

संदेश

मुझे हृदय से प्रसन्नता हो रही है कि महाविद्यालय द्वारा ''**आत्म निर्भर कृषि**'' वार्षिक कृषि पत्रिका का चतुर्थ अंक प्रकाशित होने जा रहा है। प्रस्तुत पत्रिका में दी जा रही जानकारी कृषि वैज्ञानिको व शिक्षकों द्वारा विभिन्न विषयों (बागवानी, मत्स्य पालन, पशुपालन एवं फसल सुरक्षा) पर अत्यन्त सरल भाषा में लिखी गयी है। पत्रिका के माध्यम से किसानों की आय को वैज्ञानिक विधि से बढ़ाने पर दी जा रही तकनीकी जानकारी छात्र/छात्राओं, राजधानी व आस–पास के जनपदों के कृषकों के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगी और किसान आत्म निर्भर बन सकेंगे।

पत्रिका की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

(योगेन्द्र कुमार सिंह)
प्राचार्य

विषय सूची

क्र.सं.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	संरक्षण कृषि	डॉ0 मेहीलाल (पूर्व प्रधान वैज्ञानिक)	1–4
2.	बौद्धिक सम्पदा अधिकार एवं बागवानी में इसका महत्व	कुलवीर सिंह यादव सचिन किशोर एवं आनंद कुमार	5–7
3.	जीनोम वाइड एसोसिएशन स्टडीज द्वारा फसल सुधार	लक्ष्मीदास वर्मा, आनंद कुमार और सागर	8–9
4.	पादप प्रजनन द्वारा फसल सुधार	सागर 'आनंद कुमार और' लक्ष्मीदास वर्मा	10–12
5.	CRISPR/Cas g तकनीक द्वारा फसल सुधार	आनंद कुमार लक्ष्मीदास वर्मा और सागर	13–14
6.	जैविक कीट नियंत्रण में कीट रोगजनक कवक मैटारेहिजियम अधिक प्रभावी	डॉ सत्येंद्र कुमार सिंह	15–16
7.	मधुमक्खियो का सामाजिक संघटन और संचार तंत्रःप्रकृति का अद्भुत अनुशासन	डॉ रविशंकर वर्मा	17–20
8.	एंटीऑक्सीडेंट की पौधों और मनुष्यों में महत्वपूर्ण	डॉ रजनी शुक्ला	21–22
9.	कृषि विपणन एवं डिजिटिलीकरण	डॉ उपमा त्रिपाठी	23–24
10.	उत्तर प्रदेश में फ्लोरीकल्चर मिशन तथा ग्लदिओलौस की खेती की भूमिका	डॉ दीप्ति श्रीवास्तव एवं डॉ एस.पी.सिंह	25–27
11.	ड्रेगन फ्रूट की खेती	डॉ जसकरन एवं डॉ लल्लन प्रसाद	28–30
12.	प्रिसिजन फार्मिंगः प्रत्येक पौधे की देखभाल में आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस की भूमिका	डॉ राजीव कृष्ण बाजपेई	31–32
13.	पशुओ में थेनेला रोग के कारण लक्षण एवं बचाव	डॉ सुधीर कुमार सिंह रघुवंशी एवं श्री धीरेन्द्र कुमार सिंह	31–34
14.	सीमान्त किसानों के लिए वर्टीकल फार्मिंग वरदान	डॉ कमलाकांत, डॉ.के.डी सिंह, डॉ यू.ए.सिद्दीकी	35–37
15.	मृदा मे फास्फोरस की उपलब्धता तथा कृषि में महत्व	डॉ ए.के. मिश्रा, डॉ. पुष्पा यादव	38–39
16.	सावाँ की उन्नतशील खेती	डॉ पी.के.सिंह, डॉ दीपक पाण्डेय	40–42
17.	मधुमक्खी पालन एक उत्तम स्वरोजगार	श्री धनेन्द्र कुमार सिंह	43–45
18.	जैविक उत्पादन मे समेकित पोषण प्रबंधन	डॉ दीपक पाण्डेय, डॉ एस.सी चन्दा, डॉ. पी.के.सिंह, डॉ सुधाकर सिंह	46–48
19.	संरक्षण खेती में सब्जी उत्पादन	डॉ गुरप्रीत सिंह भाटिया	49
20.	रासायनिक उर्वरकों का दुष्प्रभाव एवं सुधार के उपाय	डॉ हृदय नारायण तिवारी, डॉ धर्मेश कुमार सिंह	50–52
21.	बाजरे मे प्रमुख रोग एवं उनका एकीकृत प्रबंधन	डॉ योगेन्द्र कुमार सिंह, डॉ आशुतोष श्रीवास्तव	53–55
22.	ग्रामीण क्षेत्रों मे उद्यमिता और कौशल विकास	डॉ प्रमोद कुमार मिश्रा	56–57
23.	पालीहाउस मे खेती	इंजी विपुल अग्रवाल, श्रीमती प्रतिमा सिंह	58–59
24.	ग्रामीण महिला शक्तिकरण में नाबार्ड की भूमिका	डॉ रश्मि पांडेय	60

श्री धीरेन्द्र प्रताप सिंह, प्रकाशक

चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय

बख्शी का तालाब (लखनऊ) 226201

संरक्षण कृषि (Conservation Agricultre)

डा. मेंहीलाल
पूर्व प्रिंसिपल साइंटिस्ट एवं विभागाध्यक्ष
फसल उत्पादन विभाग
भ.कृ.अनु.प. भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान रायबरेली रोड, लखनऊ

प्रस्तावना :

भारत में हरित क्रांति के उद्भव से कथन 'Ship to Mouth' से 'Khalihan to ship' में बदल गया है। अब भारत खाद्यान उत्पादन में आत्मनिर्भरता के साथ-2 निर्यातक भी बन गया है। जहाँ वर्ष 2016-17 में खाद्यान उत्पादन 275 मिलियन टन था वहीं वर्ष 2025-26 में 354 मिलियन टन. लक्ष्य की ओर अग्रसर है यानी पिछले दसक में औसतन प्रति वर्ष खाद्यान उत्पादन में 7.9 मिलियन टन की बढ़ोतरी दर्ज की गई। परन्तु इस उपलब्धि के साथ ही साथ द्वितीय पीढ़ी की समस्यायें जैसे प्राकृतिक संसाधनों का अत्याधिक दोहन, बारम्बार कर्षण क्रियाओं से ऊर्जा खपत में बढ़ोतरी, भू-क्षरण, मृदा कार्बनिक कार्बन व उर्वरता में हास, उर्वरकों व फसल सुरक्षा रसायनों का असंतुलित उपयोग, गिरता भू-जल स्तर, फैक्टर प्रोडक्टीविटी में कमी, घटती जोत, लाभः लागत अनुपात में गिरावट और सबसे ऊपर जलवायु परिवर्तन से अधिकाँश फसलों की उत्पादकता में स्थिरता या गिरावट निरन्तर बढ़ती हुई जन संख्या के लिए खाद्य एवं पोषण सुरक्षा प्रदान करने में बहुत बड़ी चुनौतियाँ हैं।

इन परिस्थितियों में आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी तकनीको ंका विकास किया जाये जिनसे मृदा की भौतिक रासायनिक एवं जैविक गुणों को फसल अवशेष प्रबन्धन, विविधीकरण एवं वातावरणीय संतुलन से टिकाऊपन बनया जा सके तथा प्राकृतिक संसाधनों का भी संरक्षण किया जा सके। अतः संरक्षण कृषि (Conservation Agricultre) ही एक मात्र विकल्प है जिसे संसाधन तकनीक (Resource Conservation Technology-RCT), रिजनरेटिव कृषि (Regenerative Agricultre) तथा कार्बन न्यूट्रल फार्मिंग (Carbon Neutral Farming) की संज्ञा दी जाती है।

<u>संरक्षण कृषि की परिभाषा :</u>

F.A.O. द्वारा अंग्रेजी में संरक्षण कृषि की दी गई परिभाषा का हिन्दी में रूपान्तर इस प्रकार हैः संरक्षण कृषि फसल उत्पादन में संसाधन बचत की एक अवधारणा है जो धरती के ऊपर और नीचे की प्राकृतिक एवं जैविक प्रक्रियाओं को बढ़ाने पर आधारित है। संरक्षण कृषि का उद्देश्य उपलब्ध मृदा, जल एवं जैव संसाधनों तथा बाहरी आदानों के संयुक्त प्रबन्धन से प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण सुधार तथा अधिक दक्ष बनाने से है। यह पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ कृषि उत्पादन को बढ़ाने तथा टिकाऊपन प्रदान करने में योगदान देता है। इसे संसाधन दक्ष कृषि भी कहा

संरक्षण कृषि के सिद्धान्त :

आधुनिक संरक्षण कृषि की अवधारणा का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और उनकी उपयोग दक्षता में सुधार करना है जिसके लिए निम्नकर्षण क्रियायें चिन्हित की गई हैं :

- केवल रो-जोन्स में फाइन टिल्थ करने की आवश्यकता।
- न्यूनतम कर्षण का अधिकतम रूप अपनाना।
- शून्यकर्षण+फसल या फसल अवशेष से मृदा अच्छादन।
- विविधीकरण पर आधारित फसल प्रणालियों का समावेश।
- मृदा की ऊपरी सतह को सख्त होने से बचाने वाली क्रियाओं को अपनाना।

संरक्षण कृषि के उद्देश्य :

- प्राकृतिक संसाधनों (मृदा, जल, वातावरण) का संरक्षण।
- जलवायु अनुकूल फसल विविधीकरण पद्धतियों तथा उत्पादन तकनीकों का विकास।
- मृदा कार्बनिक कार्बन (मृदा हीमोग्लोबिन) के स्तर तथा सूक्ष्म जीवों की संख्या व क्रियाशीलता में बढ़ोत्तरी।
- भारी मशीनों का बार-बार उपयोग न करके भूमि में कठोर पर्त न बनने देना तथा भू-जल स्तर को बढ़ाना।
- फसल अवशेष बिछावन से मृदा नमी संरक्षण व जल आवश्यकता में कमी।
- जैविक विधि पर आधारित खरपतवारों, कीड़े-मकोड़ों तथा रोगों का नियंत्रण ।
- फसल उत्पादन में जमीन, जल और ऊर्जा की बचत।
- पशु पालन में रातिब (Concentrates) की बचत।
- सूक्ष्म सिंचाई विधि (फर्टीगेशन, स्प्रिंकलर) अपना कर जल एवं पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता में वृद्धि।
- मिड-टर्म आय एवं लाभः लागत अनुपात में वृद्धि।
- फैमिली फार्मिंग से कृषि व्यवसाय को टिकाऊ बनाना।

संरक्षण कृषि की उन्नत तकनीकियाँ :

संरक्षण कृषि की उन्नत तकनीकें सिंचित और असिंचित एग्रो-इको जोन्स के लिए अलग अलग संतुत की गई हैं।

सिंचित एग्रो-इको जोन्स के लिए आदानदक्ष तकनीकियाँ:

ऐरोविकधान की सीधी बुवाई :

इस विधि में खेत की पडलिंग के बजाय सूखे खेत की जुताई करके धान की छिटकवाँ या ड्रम सीडर से लाइनों में बुवाई की जाती है जिसमें 40-45 किलोग्राम बीज की आवश्यकता पड़ती है। मानसून की वर्षा या हलकी सिंचाई से अंकुरण हो जाता है। छिटकवाँ बोई गई फसल जब 18-20 दिन की हो जाती है। तब 45-45 सेन्टीमीटर पर देशी हल

चलाकर स्लिट खोल कर दोपहरी में विपरीत दिशा में पाटा लगाया जाता है। इस प्रक्रिया को घुरदहनी (Brushening) कहते हैं इससे पौधों का बिरलीकरण एवं सघनीकरण अपने-आप हो जाता है और साथ ही खेत की सतह पर डस्ट मल्च बनने से खरपतवार दब जाते हैं तथा वाष्पीकरण रुकने से मृदा नमी संरक्षित रहती है। इस विधि से पैदावार रोपित धान के बराबर ली जा सकती है।

धान गेहूँ पद्धति में शून्य कर्षण से गेहूँ की बुवाई :

धान गेहूँ फसल चक्र प्रमुख रूप से भारत के उत्तर - पश्चिमी क्षेत्र में अपनाया जाता है। परन्तु धान की देर से पकने वाली प्रजातियों की हार्वेस्टर से कटाई के बाद गेहूँ की बुवाई के लिए खेत तैयार करने हेतु किसान धान की ठूँठ व पराली खेत में जलाने के लिए विवस हो रहा है जिससे मृदा स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर कुप्रभाव के साथ ही गेहूँ की विलम्ब से बुवाई से पैदावार कम मिलती है। इन समस्याओं के निराकरण के लिए शून्य कर्षण तकनीक का विकास हुआ। इसमें गेहूँ की बुवाई शून्य-टिलेज फर्टीड्रिल द्वारा की जाती है। इस मशीन की फालें चाकू नुमा होती है। जो खेत में चीरा जैसी कूँड़ बनाती है तथा नीचे खाद और ऊपर बीज एक साथ डालती चलती हैं। चूँकि अवशेष नमी पर गेहूँ की बुवाई समय पर हो जाती है, इसलिए पैदावार में वृद्धि होती है।

गेहूँ+गन्ना बुवाई की फरोइरीगेटेड रेज्ड वेड्स (FIRB) तकनीक :

धान-गेहूँ-गन्ना पेड़ी पद्धति में गेहूँ के बाद गन्ना तथा पेड़ी के बाद गेहूँ की बुवाई बहुत विलम्ब से हो पाती है जिससे दोनों फसलों की पैदावार बहुत कम होती है। इसके निजाद के लिए भा.कृ.अनु.प. भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के वैज्ञानिकों ने फरोइरीगेटेड रेज्ड वेड्रस-फर्ब तकनीक तथा उसके लिए रेज्डवेड मेकर कम सीडर विकसित किया है। यह तकनीक दो प्रकार से अपनायी जा सकती है।

1. पारशेयली मेकेज्नाइजड तकनीक :

इस तकनीक में फरोइरीगेटेड रेज्ड बेड मेकर कम सीडर से 48-50 से.मी. चौड़े प्लेट फार्म नुमा बने रेज्डवेड्स पर 16 से.मी. की दूरी पर गेहूँ की तीन लाइने नवम्बर के प्रथम सप्ताह में सिंगल पास में बोई जाती हैं। फिर 80 से.मी. की दूरी पर 30-32 से.मी. चौड़ी व 20-22 से.मी. गहरी बनी नालियों में 3/4 ऊँचाई तक सिंचाई की जाती है जिससे गेहूँ का अंकुरण भली-भांति हो जाता है। गेहूँसा व अन्य खरपतवार मुख्य रूप से नम नालियों में केंद्रित होते हैं जिनका नियंत्रण यांत्रिक या रसायनिक विधि से आसानी से किया जा सकता है। बीज के साथ साथ गेहूँ में खाद की 25% बचत होती है और बेड्स पर उचित राइजोस्फेरिक इन्वायरमेन्ट होने से भरपूर उपज होती है।

गन्ने की बुवाई मनुष्यों द्वारा नालियों में पानी भरकर तीन आँख के टुकड़ो द्वारा वेट विधि (Wet Method) से फरवरी में कर दी जाती है अतः इस तकनीक से गेहूँ गन्ना क्रमवार पद्वति की अपेक्षा गन्ने की प्लाटिंग 50-60 दिन पहले हो जाती है साथ ही उचित तापमान होने व नालियों में काफी समय तक नमी बनी रहने की वजह से गन्ने का अंकुरण बहुत ही अच्छा होता है और अप्रैल में गेहूँ कटने के बाद बढ़वार भी अच्छी होती है। नालियों में सिंचाई करने से 30-35% पानी की बचत तथा पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता में वृद्धि होती है। गहरी नालियों में प्लाटिंग से गन्ना गिरता नहीं तथा पेड़ी की उपज भी अधिक हाती है।

2. कम्पलीटली मेक्नाइज्ड तकनीक :

चूँकि उपरोक्त तकनीक में गेहँ की बुवाई व गन्ने की प्लाटिंग अलग-अलग समय और विधि से करनी पड़ती है, इसलिए समय, ऊर्जा तथा लागत आदि की बचत के लिए मा.कृ.अनु.प. भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ ने एक ऐसा 'फराइरीगेटेड' रेज्ड वेड मेकर कम सीडर प्लॉटर विकसित किया है जिससे गेहूँ रेज्ड वेड्स पर बोया तथा गन्ना नालियों में प्लॉट साथ-साथ किया जाता है। इस विधि से रेज्ड बेड्स पर गेहूँ के अलावा रबी की कोई भी अन्तः फसल के रूप में बोई जा सकती है।

3. फसल विविधीकरण :

फसल विविधीकरण बहुत से उद्देश्यों जैसे प्राकृतिक संसाधनों का टिकाऊपन, पारिस्थतिकी संतुलन, उत्पादन में वृद्धि, बफर स्टाक, रोजगार सृजन, एकल फल पद्धति के जोखिम उठाने की क्षमता तथा मिड टर्म आय के लिए आवश्यक विकल्प माना जा रहा है। जलवायु परिवर्तन एवं ग्लोबल वार्मिंग की चुनौतियों के समाधान के लिए आवश्यक भी है। यही नहीं, नयी फसलें, नये उपभोगता और नयी बाजार भी फसल विविधीकरण को प्रोत्साहित कर रही हैं। इस परिपेक्ष्य में प्रचलित धान-गेहूँ प्रणाली में फलीदार फसलों को कम से कम दो वर्ष में एक बार अवश्य समावेश करना होगा। ऊँचे खेतों में खरीफ में धान के बजाय दलहनी फसलें जैसे अरहर, मूँग, उर्द, लोबिया आदि की बुवाई करनी चाहिए। इसी प्रकार रबी में गेहूँ के बजाय चना, मटर, मसूर जैसी फसलें उगाई जा सकती है। भविष्य की आवश्यकता को देखते हुए फसल चक्र मे ंऊर्जा फसलें जैसे गन्ना, मक्का, चुकन्दर, कसावा तथा औषधीय फसल मेन्था उगानी चाहिए। इस प्रकार क्रमवार तथा अन्तः फसल पद्धतियों दोनों में फसल विविधीकरण की अपार सम्भावनायें हैं।

असिंचित एग्रो-इको जोन्स के लिए संसाधन संरक्षण फसल पद्धतियाँ :

- **मृदा संरक्षणीय खेती :**

इसमें प्रमुख रूप से घासों का उगाना आता है जिससे भूमि पूरी तरह आच्छादित रहती है और मृदा कटाव नही होता है इसे साड फार्मिंग भी कहते हैं जिसमें समय-समय पर पशुओं से चराई की जाती है या घासों को काटकर जानवरों को खिलाई जाती हैं। इससे घासों का पुर्नस्थान भी होता रहता है। जैसे दूब घास, पंगोला घास, पारा घास आदि।

- **मृदा उर्वरा शक्ति वर्धक खेती :**

खेती की इस पद्धति में शीघ्र बढ़ने वाली फलीदार फसलें उगाई जाती है जो मृदा कटाव को रोकने के साथ साथ नत्रजन स्थिरीकरण द्वारा मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती और कायम रखती हैं। कभी - कभी इस पद्धति में फलीदार फसलों के साथ - साथ घासें भी उगाई जाती है। जिसके चराई या कटाई द्वारा पशुओं को हरा चारा उपलब्ध होता रहता है जैसे स्टाइलों + अंजन घास, कुल्थी+अंजन/धवलू घास 'ले' फार्मिंग में।

- **मृदा सुधारक खेती :**

यह खेती की वह विधि है जिसमें ऐसी घासें या दलहनी फसलें उगाई जाती है जो समस्यायुक्त लवणीय भूमियों का सुधार करती हैं जैसे करनाल घास, दशरथ घास, पारा घास, रोड्स घास तथा साल्ट बुश के लगातार 4-5 वर्षो तक उगाने से ऊसर जमीन का पी एच मान घटकर उसका सुधार हो जाता है और फिर इसमें धान व अन्य फसलें उगाई जा सकती है।

बौद्धिक संपदा अधिकार एवं बागवानी में इसका महत्व

कुलवीर सिंह यादव, सचिन किशोर एवं आनन्द कुमार
श्री वैष्णव कृषि संस्थान, श्री वैष्णव विद्यापीठ विश्वविद्यालय इंदौर, (मध्यप्रदेश)।
कृषि विज्ञान विभाग, एस.आर.एम. विश्वविद्यालय, सोनीपत, (हरियाणा)।
कृषि विज्ञान संकाय, जी.एल.ए. विश्वविद्यालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश)
ईमेल: (kulveer11bhu@gmail.com)

परिचय :

बौद्धिक संपदा अधिकार उन कानूनी अधिकारों को कहते है जो किसी व्यक्ति या संस्था को उनके बौद्धिक सृजन जैसे अविष्कार, साहित्यिक और कलात्मक कार्य, डिजाइन, प्रतीक, नाम और वाणिज्यिक छवियों पर मिलते हैं। ये अधिकार नवाचार को प्रोत्साहित करते हैं और रचनाकारों के आर्थिक और नैतिक हितों की रक्षा करते हैं।

बौद्धिक संपदा अधिकारों के प्रकार

1. पेटेंट : यह अधिकार किसी नए और उपयोगी आविष्कार को दिया जाता है, जिससे उपविकारक को एक निश्चित अवधि के लिए अपने आविष्कार का उपयोग, निर्माण और ब्रिकी का विशेष अधिकार मिलता है। पेटेंट की अवधि आमतौर पर 20 वर्ष होती है। भारत में सी.एस.आई.आर, आई.सी.ए.आर एवं एन.आर.डी.सी. बागवानी में पेटेंट प्रदान करने वाले प्रमुख संस्थान है।

2. कॉपीराइट : यह अधिकार साहित्यिक, कलात्मक और वैज्ञानिक कार्यो के रचनाकारों को मिलता है, जिससे वे अपनी रचनाओं के उपयोग पर नियंत्रण रख सकते है। कॉपीराइट स्वामी के आर्थिक व और नैतिक दोनों अधिकारों को स्वीकार करता है। साहित्यिक और वैज्ञानिक कार्य (उपन्यास, कवितायें, संदर्भ कार्य, समाचार पत्र, नाटक, पुस्तकें, पैम्फलेट, पत्रिकाएँ, जर्नल आदि) संगीत कार्य (गीत, वाद्य संगीत, कोरस, एकल, बैंड, ऑर्केस्ट्रा आदि) कलात्मक कार्य (जैसे पेंटिंग, चित्र, मूर्तिकला, वास्तुकला, विज्ञापन, आदि), फोटोग्राफिक कार्य (पोट, लैंडस्केप, फैशन या इवेंट फोटोग्राफी, आदि), मोशन पिक्चर्स (फिल्म, नाटक, वृत्तचित्र, न्यूजरील, नाट्य प्रदर्शनी, टेलीविजन प्रसारण, कार्टून, वीडियो टेप, डी.वी.डी., आदि) एवं कंप्यूटर प्रोग्राम (कंप्यूटर प्रोग्राम, सॉफ्टवेयर और उनके संबंधित डेटाबेस, मानचित्र और तकनीकी चित्र) कॉपीराइट के अंतर्गत आते हैं।

3. ट्रेडमार्क : यह किसी उत्पाद या सेवा के विशिष्ट चिन्ह, नाम या प्रतीक को पहचानने और उसकी रक्षा करने का अधिकार है। ट्रेडमार्क एक उपक्रम के माल या सोवाओं को अन्य उपक्रमों से अलग करता है। भारत में ट्रेडमार्क पंजीकरण की प्रारंभिक अवधि 10 वर्ष है और उसके बाद इसे समय-समय पर नवीनीकृत किया जाना चाहिए। आवेदक ट्रेडमार्क पंजीकरण के लिए ट्रेडमार्क रजिस्ट्री कार्यालय, मुंबई (मुख्यालय), दिल्ली, कोलकाता, अहमदाबाद और चेन्नई में आवेदन कर सकता है।

4. ट्रेड सिक्रेट्स : कोई भी आविष्कार या ज्ञान जो अभिनव (पेटेंट योग्य नही) न हो, लेकिन व्यापार के लिए उपयोगी हो और आर्थिक लाभ प्रदान करता हो, उसे ट्रेड सिक्रेट्स के रूप में रखा जा सकता है। इसके अलावा, किसी नवीन या रचनात्मक जानकारी का पेटेंट, कॉपीराइट, औद्योगिक डिजाइन आदि का पंजीकरण लंबित हो या प्रक्रिया में हो तो उसे भी ट्रेड सिक्रेट्स के अंतर्गत रखा जाता है।

5. औद्योगिक डिज़ाइन : यह किसी उत्पाद के बाहरी रूप, आकार, रंग या सजावट की सुरक्षा करता है। भारत में डिजाइन अधिनियम, 2000 के अनुसार औद्योगिक डिजाइन के संरक्षण की अवधि 10 वर्ष है। इस अवधि को 5 वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है। चेन्नई, मुंबई, नई दिल्ली और कोलकाता में पेटेंट कार्यालय भी औद्योगिक डिजाइन से संबंधित है। पेटेंट कार्यालय, कोलकाता दायर औद्योगिक डिजाइन की सभी संबंधित सूचनाओं की वैधानिक आवश्यकता के रूप में डिजाइन का रजिस्टर बनाए रखता है।

6. भौगोलिक संकेत : यह किसी उत्पाद के मूल भौगोलिक स्थान से जुड़ी विशेषताओं की रक्षा करता है। भौगोलिक संकेतक किसी वस्तु की पहचान ऐसे स्थान से उत्पन्न होने के रूप में करते हैं, जहां वस्तु की एक निश्चित विशेषता अनिवार्य रूप से उसके भौगोलिक मूल के कारण होती है। दिसंबर 1999 में संसद ने वस्तुओं के भौगोलिक संकेत (पंजीकरण और संरक्षण) अधिनियम 1999 पारित किया था। यह अधिनियम भारत में वस्तुओं से सम्बन्धित भौगोलिक संकेतों के पंजीकरण और बेहतर संरक्षण का प्रावधान करता है। इन नियमों के तहत भौगोलिक संकेत 10 वर्षो के लिए दिया जाता है और समय-समय पर अगले 10 वर्षो के लिए नवीनीकरण संभव है। आंध्र प्रदेश की गुंटूर सन्नम मिर्च, बनगनपल्ले आमः अरूणाचल प्रदेश का अरूणाचल नारंगीः असम की तेजपुर लीचीः बिहार की शाही लीची, मगही पानः गोवा की फेनीः गुजरात का गिर केसर आमः हिमाचल प्रदेश की कांगड़ा चाय, जम्मू और कश्मीर का केसरः कर्नाटक का कूर्ग संतरा, मैसूर पान, नंजनागुड केला, अप्पेमिडी आम, कमलापुर लाल केलाः कर्नाटक की मानसून मालाबार रोबस्टा कॉफीः केरल का वजहकुलम अनानासः महराष्ट्र की महाबलेश्वर स्ट्रॉबेरी, कोल्हापुर का गुड, नागपुर का संतरा, वायगांव हल्दी, भिवापुर मिर्च, वेंगुरला काजू, लासलगांव प्याज, दहानू घोलवड़ चीकू, बीड कस्टर्ड सेब, जालना मीठा संतरा, जलगांव केला, मराठवाड़ा केसर आम, पुरन्दर अंजीर, जलगांव भरित बैगन, सोलापुर अनारः मणिपुर का कचाई नींबू, मिजोरम की मिजो मिर्च, नागालैंड का नागा मिर्चा, नागा ट्री टमाटर, ओडिशा का गंजम केवड़ा फूल, कंधमाल हलदी, सिक्किम की बड़ी इलायची, तमिलनाडु का ईथोमोझी लंबा नारियल, विरूपाक्षी हिल केला, सिरूमलाई हिल केला, ब्यादगी मिर्च, त्रिपुरा का क्वीन अनानास, उत्तर प्रदेश का इलाहाबाद सुर्खा अमरुद, मलिहाबादी दशहरी आम, उत्राखंड का तेजपात और पश्चिम बंगाल की दार्जिलिंग चाय, लक्ष्मण भोग आम, खिरसापति (हिमसागर) आम, मालदा का फजली आम आदि भौगोलिक संकेत का प्रमुख उदाहरण है।

7. पौधों की किस्मों का संरक्षण : कृषि में निजी क्षेत्र के बढ़ते निवेश और निजी बीज उद्योग के फलने - फूलने के साथ पौधों की किस्मों में बौद्धिक संपदा अधिकार की अवधारणा ने गति पकड़ी। पौधों की विविधता और किसानों के अधिकार अधिनियम (पी.पी.वी.एफ.आर.ए.) 2001 का उद्देश्य किसानों ओर प्रजनकों को अधिकारों की सुरक्षा करना है।

इस अधिनियम के तहत, किसान अपने खेत की उपज को सुरक्षित करने, इस्तेमाल करने, बोने, बेचने, और साझा करने का हकदार हैं। इस अधिनियम के अंतर्गत सामान्यत सजावटी पौधे जैसे गुलाब, गुलदाउदी, आर्किडः सब्जियाँ जैसे टमाटर, आलू, बैंगन, गोभी, भिंडी, फूलगोभी, प्याज, लौकी, करेला, कद्दू, खीराः फल जैसे आम, बादाम अखरोट, चेरी, खुबानी, सेब, नाशपाती, अनार, अंगूर बेर, मसाले जैसे काली मिर्च, छोटी इलायची, अदरक, हल्दी, धनिया, मेथी, औषधीध और सुगंधित पौधे जैसे इसबगोल, मेंथॉल मिंट, पेरीविंकल, ब्राही तथा रोपण फसलें जैसे नारियल, यूकेलिप्टस, कैजुरिना आदि पंजीकरण के लिए अधिसूचित की गयी हैं।

बागवानी में बौद्धिक संपदा अधिकरों का महत्व : बागवानी में बौद्धिक संपदा अधिकारों का उद्देश्य किसानों, शोधकर्ताओं और बगवानी उत्पादकों को उनके नवाचारों और नई किस्मों के विकास के लिए प्रोत्साहित करना है। यह अधिकार उन्हें अपने शोध और विकास के परिणामों से आर्थिक लाभ प्राप्त करने में मदद करते हैं। भारत में बागवानी क्षेत्र में बौद्धिक संपदा अधिकारों का संरक्षण महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह कृषि उत्पादों की गुणवत्ता और विविधता को बढ़ावा देता है। उदाहरण के लिए, दार्जिलिंग चाय और बनारसी साड़ी जैसे उत्पादों को भौगोलिक संकेत (जी.आई.) के तहत संरक्षण प्राप्त है जिससे इनकी विशिष्टता और गुणवत्ता सुनिश्चित होती है।

बौद्धिक संपदा अधिकारों से संबंधित चुनौतियाँ

1. जागरूकता की कमी : किसानों और बागवानी उत्पादकों में बौद्धिक संपदा अधिकारों के प्रति जागरूकता की कमी है, जिससे वे अपने अधिकारों का सही उपयोग नही कर पाते।

2. कानूनी प्रक्रियाओं की जटिलता : बौद्धिक संपदा अधिकारी की पंजीकरण और संरक्षण की प्रक्रियाएँ जटिल और अधिक समय लेने वाली हो सकती हैं, जो छोट उत्पादकों के लिए चुनौतीपूर्ण हैं।

3. अन्यथा उपयोग : अन्य देशों द्वारा भारतीय बागवानी उत्पादो और उनके पारंपरिक ज्ञान के बिना अनुमति के उपयोग एक गंभीर समस्या है।

निष्कर्ष : बौद्धिक संपदा अधिकार बागवानी क्षेत्र के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये नवाचार को प्रोत्साहित करते हैं और उत्पादकों के अधिकारों की रक्षा करते हैं। भारत में इन अधिकारों का प्रभावी उपयोग और संरक्षण बागवानी उत्पादों की गुणवत्ता, विविधता और वैश्रिवक प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने में सहायक होगा।

जीनोम-वाइड एसोसिएशन स्टडीज (GWAS) द्वारा फसल सुधार

लक्ष्मीदास वर्मा, अनान्द कुमार और सागर
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,
कुमारगंज, 224229 (अयोध्या), भारत
कृषि विज्ञान संकाय, जी.एल.ए. विश्वविद्यालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश) – 281406, भारत
पत्राचार लेखक: laxmidasverma8@gmail.com

भूमिका :

कृषि ओर आनुवंशिकी विज्ञान में हो रही प्रगति ने फसल सुधार की प्रक्रिया को और अधिक प्रभावी बना दिया है। पारंपरिक प्रजनन विधियों के साथ-साथ आधुनिक जीनोमिक तकनीकों का उपयोग फसलों की उपज, गुणवत्ता और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के लिए किया जा रहा है। इन तकनीकों में जीनोम-वाइड एसोसिएशन स्टीज (GWAS) एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपकरण है, जो फसलों के जीनोम में ऐसे अनुवाशिंक कारकों की पहचान करता है जो वांछित गुणों के लिए उत्तरदायी होते हैं।

जीनोम-वाइड एसोसिएशन स्टडीज (GWAS) क्या है?

(GWAS) एक जीनोमिक तकनीक है जो संपूर्ण जीनोम में अनुवांशिक विविधताओं का विश्लेषण करके किसी विशेष गुण से जुड़े जीन की पहचान करती है। यह तकनीक फसलों के डीएनए अनुक्रमों में छोटे अनुवाशिंक भिन्नताओं (सिंगल न्यूक्लियोटाइड पॉलिमॉरफिज़्म, SNPs) की खोज करती है और उन्हें फसलो के विशेष लक्षणों से जोड़ती है।

(GWAS) का प्रमुख उदेदेश्य उन अनुवाशिंक मार्करों की पहचान करना है जो किसी विशेषण गुण जैसे कि रोग प्रतिरोधक क्षमता, सूखा सहिष्णुता, उपज वृद्धि, और पोषण गुणवत्ता से जुड़े होते हैं।

फसल सुधार में GWAS की भूमिका

तकनीक का उपयोग फसलों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने और गुणवत्ता सुधारने में किया जा रहा है। इसके कुछ प्रमुख अनुप्रयोग निम्नलिखित हैं:

1. रोग प्रतिरोधकता बढ़ाना

फसलें विभिन्न प्रकार के रोगजनकों से प्रभावित होती हैं, जिससे उनकी उपज और गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। GWAS के माध्यम से वैज्ञानिक ऐसे जीन की पहचान कर सकते हैं जो रोग प्रतिरोधक क्षमता को नियंत्रित करते हैं। उदाहरण के लिए, गेहूँ और चावल में फंगल और बैक्टीरियल रोगों के प्रति प्रतिरोधकता विकसित करने के लिए GWAS का उपयोग किया गया है।

जलवायु परिवर्तन के कारण फसलें सूखा और लवणता जैसी समस्याओं से प्रभावित हो रही हैं। GWAS के माध्यम से ऐसे जीन की पहचान की जा सकती है जो पौधों को सूखे और खारे पानी की परिस्थितियों में भी अच्छी उपज देने में सक्षम बनाते हैं।

3. उपज और गुणवत्ता में सुधार

GWAS के माध्यम से वैज्ञानिक उन जीनोम अनुक्रमों की पहचान कर सकते हैं जो उच्च उपज और बेहतर पोषण मूल्य के लिए जिम्मेदार होते हैं। उदाहरण के लिए, चावल, मक्का और गेहूँ जैसी फसलों इस तकनीक का उपयोग करके उपज और पोषण सुधार के लिए नए जीन मार्कर खोजे गए हैं।

4. कीट प्रतिरोधकता

कीटो से फसलों की रक्षा करने के लिए GWAS का उपयोग किया जा रहा है। कुछ विशेष जीन पौधों को कीटों के हमले से बचाते हैं, और GWAS माध्यम से जीन की पहचान की जा सकती है। इससे किसानों को कीटनाशकों पर निर्भरता कम करने में सहायता मिलता है।

GWAS की कार्यप्रणाली

GWAS को प्रभावी रूप से संचालित करने के लिए निम्नलिखित चरण अपनाए जाते हैं:

1. पौधों का चयन – अध्ययन के लिए बड़ी संख्या में पौधों को चुना जाता है, जिनमें आनुवांशिक विविधता पाई जाती है।
2. फेनोटाइपिक डाटा संग्रह – पौधों के विभिन्न लक्षणों (जैसे उपज, रोग प्रतिरोधकता, सूखा सहिष्णुता) का मूल्यांकन किया जाता है।
3. डीएनए अनुक्रमण – चुने गए पौधों के डीएनए का अनुक्रमण किया जाता है और NP मार्करों की पहचान की जाती है।
4. सांख्यिकीय विश्लेषण – जीनोम डेटा और फेनोटाइपिक डेटा के बीच संबंधों का विश्लेषण किया जाता है।
5. उपयुक्त जीन की पहचान –विश्लेषण के आधार पर उन जीनों की पहचान की जाती है। जो लक्षित गुणों के लिए जिम्मेदार होते हैं।

GWAS बनाम पारंपरिक प्रजनन तकनीकें

GWAS तकनीक पारंपरिक प्रजनन विधियों की तुलना में अधिक सटीक और तेज हाती है। पंपरागत प्रजनन में कई पीढ़ियों तक परीक्षण करने की आवश्यकता होती है, जबकि GWAS सीधे आनुवांशिक मार्करों की पहचान करके चयन प्रक्रिया को सरल और प्रभावी बनाती हें

शेष भाग पृष्ठ संख्या 12 पर...

पादप प्रजनन द्वारा फसल सुधार

सागर, आनन्द कुमार और लक्ष्मीदास वर्मा
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, 224229 (अयोध्या), भारत
कृषि विज्ञान संकाय, जी.एल.ए. विश्वद्यिालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश) – 281406, भारत
पत्राचार लेखक: sagararora470@gmail.com

भूमिका :

कृषि क्षेत्र में नवाचार और वैज्ञानिक प्रगति ने फसल सुधार की दिशा में कई नए द्वारा खोले हैं। परंपरागत प्रजनन तकनीकों के साथ साथ जब जीनोमिक तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है। जीनोमिक चयन (Genomic selction & GS) एक अत्याधुनिक तकनीक है जो पौधों के पूरे जीनोम में मौजूद अनुवांशिक विविधताओं के आधार पर फसल सुधार में सहायता करती है। यह तकनीक किसानों और वैज्ञानिकों को अधिक उत्पादक, रोग प्रतिरोधी और जलवायु अनुकूल फसलें विकसित करने में मदद करती है।

जीनोमिक चयन (Genomic Selection & GS) क्या है?

जीनोमिक चयन एक मार्कर-सहायता प्राप्त चयन (Marker-Assisted Selection & MAS) विधि का उन्नत रूप है, जिसमें पूरे जीनोम में फैले अनुवांशिक मार्करों की जानकारी का उपयोग किया जाता है। यह तकनीक पारंपरिक चयन विधियों की तुलना में अधिक तेज और प्रभावी है, क्योंकि यह केवल विशिष्ट जीन पर निर्भर रहने के बजाय संपूर्ण जीनोम को ध्यान में रखती है। जीनोमिक चयन फसलों के लक्षणों की भविष्यवाणी करने और प्रजनन प्रक्रिया को अधिक कुशल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

फसल सुधार में जीनोमिक चयन की भूमिका

जीनोमिक चयन कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला रहा है। इसका उपयोग निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

1. रोग प्रतिरोधकता में सुधार

फसलें विभिन्न प्रकार के रोगजनकों से प्रभावित होती हैं, जिससे उनकी उपज और गणुवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जीनोमिक चयन तकनीक का उपयोग करके वैज्ञानिक ऐसे पौधों का चयन कर सकते हैं जिनमें प्राकृतिक रूप से अधिक रोग प्रतिरोधकता होती है।

2. उपज बढ़ाना

उच्च उपज देने वाली किस्मों का चयन करने के लिए जीनोमिक चयन का उपयोग किया जाता है। यह तकनीक पारंपरिक प्रजनन विधियों की तुलना में अधिक तेजी से उत्पादक पौधों की पहचान कर सकती है जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है।

3. जलवायु सहिष्णुता

जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि, सूखा, लवणीयता और अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों फसलों की उत्पादकता को प्रभावित कर रही हैं। जीनोमिक चयन का उपयोग करके वैज्ञानिक ऐसे पौधों विकसित कर सकते हैं जो प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थतियों में भी अच्छा उत्पादन कर सकें।

4. पोषण गणुवत्ता में सुधार

फसलों के पोषण मूल्य को बढ़ाने के लिए भी जीनोमिक चयन का उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, चाावल और गेहूं जैसी प्रमुख फसलों में प्रोटीन, विटामिन और खनिज तत्वों की मात्रा बढ़ाने के लिए इस तकनीक का उपयोग किया जा रहा है।

जीनोमिक चयन की कार्यप्रणाली

जीनोमिक चयन निम्नलिखित चरणों में किया जाता है:

1. **डीएनए अनुक्रमण** (Genotyping) – पौधों के डीएनए का अनुक्रमण किया जाता है और पूरे जीनोम में फैले NP (सिंगल न्यूक्लियोटाइड पॉलिमॉरफिज़्म) मार्करों की पहचान की जाती
2. **फेनोटइपिक मूल्यांकन** – चयनित पौधों के विभिन्न गुणों जैसे कि उपज, रोग प्रतिरोधकता, और पोषण मूल्य का अध्ययन किया जाता है।
3. **सांख्यिकीय मॉडिलिंग** – जीनोम डेटा और फेनोटाइपिक डेटा उपयोग करके जीनोमिक प्रिडिक्शन मॉडल विकसित किया जाता है।
4. **चयन और सुधार** – उच्च प्रदर्शन वाले पौधों का चयन किया जाता है और उनके जीनोम डेटा के आधार पर नई पीढ़ियों का सुधार किया जाता है।

जीनोमिक चयन बनाम पारंपरिक प्रजनन तकनीकें

पैरामीटर	**जीनोमिक चयन**	**पारंपरिक प्रजन**
समय	तेज (कम पीढ़ियो में चयन)	धीमा (कई पीढ़ियों की आवश्यकता)
सटीकता	(अधिक सटीक संपूर्ण जीनोम का विश्लेषण)	कम सटीक (फेनोटाइप पर निर्भर)
लागत	प्रारंभ में अधिक, लेकिन दीर्घकालिक रूप से लाभकारी	अपेक्षाकृत कम
प्रभावशीलता	उच्च (जलवायु अनुकूलन और रोग प्रतिरोध में उपयोगी)	सीमित

जीनोमिक चयन से संबंधित चुनौतियाँ

हालांकि जीनोमिक चयन अत्यंत प्रभावी तकनीक है, लेकिन इसके उपयोग में कुछ चुनौतियाँ भी हैं

उच्च लागत – जीनोमिक अनुक्रमण और डेटा विश्लेषण के लिए उन्नत प्रयोगशालाओं और उपकरणों की आवश्यकत होती है।

पर्यावरणीय प्रभाव – कुछ मामलों में, जीनोमिक भविष्यवाणियों पर्यावरणीय कारकों के कारण कम सटीक हो सकती है।

डेटा प्रबंधन – बड़े जीनोमिक डेटा सेट को संभालना और उसका विश्लेषण करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

निष्कर्ष

जीनोमिक चयन तकनीक ने फसल सुधार के क्षेत्र में एक नई क्रांति ला दी हे। यह तकनी क न केवल फसल उत्पादन को बढ़ाने में सहायक है, बल्कि खाद्य सुरक्षा, जलवायु परितर्वन और पोषण संवर्धन जैसी चुनौतियो का समाधान करने में भी कारगर है। हालांकि इसके सफल उपयोग के लिए उपयुक्त नीतियों, शोध और संसाधनों की आवश्यकता है। यदि इस तकनीक का सही दिशा में उपयोग किया जाए, तो यह कृषि के भविष्य को अधिक उन्नत और टिकाऊ बना सकती है।

GWAS से संबंधित चुनौतियाँ

हालांकि GWAS तकनीक अत्यधिक प्रभावी है, लेकिन इसके उपयोग में कुछ चुनौतियाँ भी हैं:

बड़े डेटा सेट का विश्लेषण – GWAS के लिए जीनोमिक और फेनोटाइपिक डेटा का बड़ा सेट आवश्यक होता है, जिसे विश्लेषण करने के लिए उच्च–स्तरीय जैवसूचनात्मक (बायोइन्फॉर्मेटिक्स) उपकरणों की आवश्यकता होती है।

पर्यावरणीय कारकों का प्रभाव – फसलों के गुणों पर पर्यावरणीय परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है, जिससे सटीक परिणाम प्राप्त करना कठिन हो सकता है।

लागत और संसाधन – जीनोमिक अनुक्रमण और डेटा विश्लेषण के लिए उच्च लागत और उन्नत प्रयोगशाला सुविधाओं की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष

जीनोम–वाइड एसोसिएशन स्टडीज (GWAS) तकनीक फसल सुधार के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपकरण साबित हो रही हे। इसकी मदद से वैज्ञानिक तेजी से वांछित गुणों वाले पौधों का चयन कर सकते हैं, जिसस कृषि उत्पादकता, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा मिलेगा। हालाँकि, इसके सफल उपयोग के लिए डेटा प्रबंधन, विश्लेषण और जीनोमिक अनुसंधान को और विकसित करने की आवश्यकता है। यदि इस तकनीक का सही दिशा में उपयोग किया जाए, तो यह कृषि के भविष्य को अधिक उन्नत और टिकाऊ बना सकती है।

CRISPR/Cas9 चयन द्वारा फसल सुधार

सागर, आनन्द कुमार और लक्ष्मीदास वर्मा
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, 224229 (अयोध्या), भारत
कृषि विज्ञान संकाय, जी.एल.ए. विश्वविद्यालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश) – 281406, भारत
पत्राचार लेखक: sagararora470@gmail.com

भूमिका :

कृषि क्षेत्र में नवाचार और वैज्ञानिक प्रगति ने फसल सुधार की दिशा में कई नए द्वारा खोले हैं। परंपरागत प्रजनन तकनीकों के साथ साथ जब जीनोमिक तकनीकों के साथ साथ अब जीनोम संपादन तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है। CRISPR-Cas9 (क्लस्टर्ड रेगुलर इंटरस्पेस्ड शॉर्ट पैलिंड्रोमिक रिपीट्स – क्रिस्पर एसोसिएटेड प्रोटीन 9) एक ऐसी क्रांतिकारी जीन एडिटिंग तकनीक है जो फसल सुधार में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो रही है। यह तकनीक सटीक और कुशलतापूर्वक पौधों के जीनोम में इच्छित परिवर्तन करने में सक्षम है।

CRISPR-Cas9 तकनीक क्या है?

CRISPR-Cas9CRISPR-Cas9 तकनीक एक जीन एडिटिंग पद्धति है जो जीवों के डीएनए में लक्षित परिवर्तन करने की क्षमता रखती है। यह तकनीक प्राकृतिक रूप से जीवाणुओं (बैक्टीरिया) में पाई जाती है, जहां यह वायरस के खिलाफ प्रतिरक्षा प्रणाली के रूप में कार्य करती है। इस प्रणाली में दो मुख्य घटक होते हैं:

1. **गाइड आरएनए** (gRNA) – यह डीएनए के लक्षित हिस्से को पहचानता है।
2. (Cas9) **न्यूक्लिएज एंजाइम** – यह लक्षित डीएनए को काटने का कार्य करता है।

इस तकनीक द्वारा वैज्ञानिक किसी भी पौधो के डीएनए में आवश्यक संशोधन कर सकते हैं, जिससे फसल की उपज, पोषण स्तर, रोग प्रतिरोधक क्षमता और पर्यावरणीय सहिष्णुता में सुधार किया जा सकता है।

फसल सुधार में की भूमिका

CRISPR-Cas9 तकनीक पारंपरिका और आधुनिक कृषि विधियों को अधिक प्रभावी बनाने में सहायक हो रही है। इसके कुछ प्रमुख अनुप्रयोग निम्नलिखित हैः

1. बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता

फसलें विभिन्न प्रकार के रोगजनकों जैसे वायरस, बैक्टीरिया और कवकों से प्रभावित होती है। CRISPR-Cas9 का उपयोग करके पौधों में ऐसे जीनोम संशोधन किए जा सकते हैं, जो उन्हें इन रोगजनकों प्रति अधिक प्रतिरोधक बनाते हैं। उदाहरण के लिए, गेहूं मे पाउडरी मिल्ड्यू प्रतिरोध विकसित करने के लिए इस तकनीक का सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है।

2. उपज और गुणवत्ता में सुधार

CRISPR-Cas9 द्वारा वैज्ञानिक ऐसे जीन को लक्षित कर सकते हैं जो पौधों की उपज और पोषण गुणवत्ता को नियंत्रित करते हैं। टमाटर और चावल जैसी फसलों में इस तकनीक के माध्यम से आकार, स्वाद और पोषण मूल्य को बेहतर बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

3. जलवायु परिवर्तन के प्रति सहिष्णुता

बढ़ते तापमान, सूखा और अन्य जलवायु परिवर्तन संबंधी समस्याओं का सामना करने के लिए CRISPR-Cas9 तकनीक का उपयोग किया जा रहा है। वैज्ञानिक ऐसे पौधो विकसित कर रहे हैं जो अत्यधिक गर्मी या सूखा जैसी कठोर परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन कर सकें। उदाहरण के लिए चावल और मक्का जैसी फसलों को सूखा प्रतिरोधी बनाने पर शोध हो रहा है।

4. कीटनाशकों और रसायनों की आवश्यकता में कमी

CRISPR-Cas9 से जीन एडिटिंग द्वारा फसलों में कीट प्रतिरोधकता बढ़ाई जा सकती है, जिससे कीटनाशकों की आवश्यकता कम हो जाती है। यह पर्यावरण के लिए भी लाभकारी है क्योंकि रसायनों के उपयोग में कमी से मिट्टी और जल स्रोतों की गुणवत्ता बनी रहती है।

5. संबंर्धित पोषण और खाद्य सुरक्षा

CRISPR-Cas9 तकनीक द्वारा फसलों में पोषण मूल्य को बढ़ाने के प्रयास किए जा रहे हैं। वैज्ञानिक ऐसे पौधे विकसित कर रहे हैं जिनमें विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट की मात्रा अधिक हो। उदाहरण के लिए, चावल की एक किस्म को एडिट किया गया है ताकि उसमें अधिक विटामिन ए पाया जा सके।

CRISPR-Cas9 बनाम परंपरागत प्रजनन विधियाँ

CRISPR-Cas9 तकनीक पारंपरिक प्रजनन विधियों की तुलना में अधिक प्रभावी और सटीक है। सामान्यतः, परंपरागत प्रजनन में वर्षो लग सकते हैं और यह प्रकृति पर आधारित होता है, जबकि CRISPR-Cas9 द्वारा जीनोम में त्वरित और सटीक बदलाव संभव हैं। यह तकनीक अनुवांशिक रूप से संशोधित जीवों (GMOs) से भी भिन्न है, क्योंकि इसमें बाहरी डीएनए जोड़े बिना केवल लक्षित जीनोम संशोधन किया जाता है।

नैतिक और कानूनी चुनौतियाँ

हालांकि CRISPR-Cas9 तकनीक के अनेकों लाभ हैं, लेकिन इसके उपयोग को लेकर कुछ नैतिक और कानूनी मुद्दे भी हैं।

शेष भाग पृष्ठ संख्या 36 पर...

जैबिक कीट नियंत्रण में कीट रोगजनक कवक मेटारहिज़ियम अधिक प्रभावी

डॉ सत्येंद्र कुमार सिंह
सह–आचार्य
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब लखनऊ

कीट रोजजनक कवक (ईपीएफ) रासायनिक कीटनाशकों के प्राकृतिक विकल्पों में से एक हैं, क्योंकि इनमें कीटों की एक विस्तृत श्रंखला पर आक्रमण करने की क्षमता होती है, साथ ही साथ अपने मेजाबनों की प्रतिरक्षा प्रणाली से बचने के लिए विभिनन तंत्र भी होते है। सबसे व्यापक रूप से वर्णित संभावित ईपीएफ में एस्कोमाइसेट प्रजाति ब्यूवेरिया और मेटारहिजियम शामिल हैं। इनका उपयोग कई देशों में व्यावसायिक पैमाने पर तेजी से बढ़ रहा है।

मेटारहिज़ियम को लगभग 140 वर्ष पहचाना गया था। तब से, इसे सबसे महत्वपूर्ण कीट रोगजनक कवकों में से एक माना जाता है,और इसका उपयोग कीटों, कवकों, जीवाणुओं और विषाणुओं के जैविक नियंत्रण के लिए किया जाता है। यह कीटों के कवक संक्रमण, ग्रीन मस्कार्डिन रोग के लिए जिम्मेदार है। मेटारहिज़ियम एनिसोप्लिया एक मृदा कवक है जिसमे कई जीनोटाइप होते हैं जो आर्कटिक से लकर उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों तक वितरित हैं। इसकी मेजाबन प्रजातियों की एक विस्तृत श्रंखला है, हालांकि व्यक्तिगत उपभेद और कुछ जीनोटाइप आमतौर पर अधिक विशिष्ट होते हैं। हालांकि, इसकी मेजबान सीमा बी. बेसिआना की तुला में संकीर्ण है। इसके अधिकाशं मेजबान मिट्टी में रहने वाले कीट और दीमक हैं, जैसे कि भृंगः डिप्टऐरा और हाइमेनोप्टेरा में संक्रमण दुर्लभ हैं सर्वोतम जैविक कीटनाशक Metarhizium anisopliae है।

मेटारिज़ियम अनिसोप्लिया एक ऐसा जैविक कीटनाशक है, जिसका उपयोग लगभग 300 कीट प्रजातियों के खिलाफ किया जाता है। यह विभिन्न प्रकार की फसलों, फलों और सब्जियों में आनेवाले फली बेड़क, फल छेदक, पत्ती लपेअक, पत्ती खाने वाले कीट, दीमक, सफेद, लट्ट, थ्रिप्स, घास और पौधों के टिड्डे, एफिड, सेमीलूपर, कटवर्म, पाइरिल्ला, मिलीबग आदि के नियंत्रण में किया जाता है। इसक spore काफी नमी में कीट के शरीर पर अंकुरित हो जाते हैं, जो त्वचा के माध्यम से शरीर में प्रवेश करके उनकी वृद्धि करते हैं, और यह फफूंदी परपोषी कीट के शरीर को खा जाती है, जिसके कारण कीट मर जाता है और पहले कीट के शरीर के जोंड़ों पर सफेद रंग की फफूंद दिखाई देती है, जो बाद में गरहे हरे रंग में बदल जाती है।

जैविक कीटनाशक Metarhizium anisopliae से नियंत्रित कीट –

मेटारिज़ियम अनिसोप्लिया विभिन्न प्रकार की फसलों, फलों और सजियों में आनेवाले फली बेड़क, फल छेदक, पत्ती लपेटक, पत्ती खाने वाले कीट, दीमक, सफेद लट्ट, थ्रिप्स, घास और पौधों के टिड्डे, एफिड, सेमीलूपर, कटवर्म, पाइरिल्ला, मिलीबग आदि को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

जैविक कीटनाशक Metarhizium anisopliae के उपयोग और लाभ –

- जैविक कीटनाशक *Metarhizium anisopliae* से फसल में हाने वाले नकरात्मक प्रभाव को समाप्त किया जा सकता है।
- जैविक कीटनाशक *Metarhizium anisopliae* का उपयोग करने से वातावरण का प्रदूषण नही होता है।
- जैविक कीटनाशक *Metarhizium anisopliae* का उपयोग करने से वातावरण का प्रदूषण नही होता है और कीटों के प्रति प्रतिरोध भी विकसित नहीं होता है।
- मेटारिज़ियम अनिसोप्लिया से 200 सो भी अधिक प्रकार के कीटों का नियंत्रण किया जा सकता है।

जैविक कीटनाशी *Metarhizium anisopliae* की मात्रा –

- यदि हम खेती में खड़ी फसलों के पत्तों पर छिड़काव की बात करें, तो 3–4 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करना उचित होता है और भूमि में नमी आनी चाहिए।
- यदि किसान भइयों को मृदा में देना हो, तो एक एकड़ में उपयो के लिए 3 लीटर प्रति एकड़, 200 लीटर पानी में मिलाकर उपयोग करना उपयुक्त होता है।
- यदि संभव हो, तो किसान भाइयों को ड्रेंचिंग, ड्रिप, या बहाव विधियों से अधिक फायदेमंदी से उपयोग करना चाहिए, विशेषकर मृदाजनित कवकिय रोगों के नियंत्रण के लिए।

मधुमक्खियों का सामाजिक संगठन और संचार तंत्र: प्रकृति का अद्भुत अनुशासन

डॉ. रवि शंकर वर्मा
सहायक आचार्य
विज्ञान संकाय
जंतु विज्ञान विभाग
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

1. प्रस्तावना

प्रकृति में कीटों की दुनिया अत्यंत विविधतापूर्ण और जटिल है। यह विविधता केवल आकृति, आकार और रंग-रूप तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके जीवन-शैली और सामाजिक व्यवहार में भी दिखाई देती है। कुछ कीट अकेले जीवन व्यतीत करते हैं और अपने अस्तित्व के लिए स्वयं पर निर्भर रहते है। ऐसे कीटों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता अधिक होती है, परंतु सहयोग और सामूहिकता का अभाव रहता है। दूसरी ओर, कुछ कीट छोटे समूहों में रहते हैं, जहाँ सीमित सहयोग और कार्य-विभाजन देखने को मिलता है।

इन सबके बीच मधुमक्खियाँ उन विशेष कीटों में आती हैं जिन्हे समाजिक कीट कहा जाता हैं इसका कारण यह है कि उनका संपूर्ण जीवन सामूहिक संगठन और सहयोग पर आधारित होता है। मधुमक्खियों का समाज एक सुव्यवस्थित छत्ते में रहता है, जहाँ हजारों सदस्य मिलकर कार्य करते हैं। इस छत्ते का संचालन किसी एक मधुमक्खी के प्रयास से नहीं, बल्कि पूरे समूह के सामूहिक योगदान से होता है। प्रत्येक सदस्य का कार्य निश्चित होता है और उसका योगदान छत्ते के अस्तित्व के लिए अनिवार्य होता है।

मधुमक्खियों का संगठन श्रम-विभाजन, अनुशासन और सहयोग का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। रानी मधुमक्खी प्रजनन का कार्य करती है, नर मधुमक्खियाँ रानी के साथ संभोग करती हैं। और मजदूर मधुमक्खियों भोजन, संग्रह, बच्चों की देखभाल, छत्ते की सफाई तथा रक्षा जैसे कार्य करती हैं। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग का कार्य स्पष्ट रूप से निर्धारित होता है और सभी मिलकर छत्ते की व्यवस्था बनाए रखते हैं।

सिर्फ संगठन ही नहीं, मधुमक्खियो का सांचार भी अत्यंत रोचक है। वे भोजन की दिशा और दूरी बताने के लिए नृत्य भाषा का प्रयोग करती हैं। मजदूर मधुमक्खियाँ ''वागल डांस'' करती हैं, जिसमें वे आठ (8) की आकृति बनाते हुए उड़ती हैं। इस नृत्य की गति और कोण से अन्य मधुमक्खियाँ समझ जाती हैं कि भोजन कहाँ है। इसके अतिरिक्त, मधुमक्खियाँ फेरोमोन संकेतो का भी प्रयोग करती हैं। रानी मधुमक्खियाँ विशेष फेरोमोन छोड़ती है जिससे छत्ते की व्यवस्था बनी रहती है, जबकि मजदूर मधुमक्खियाँ गंध संकेतों से खतरे या भोजन की सूचना देती हैं।

2. भारत में पाई जाने वाली प्रमुख मधुमक्खी प्रजातियाँ और उनका वितरण

प्रजाति	वैज्ञानिक नाम	विशेषताएँ	शहद उत्पादन	भारत में पाए जाने वाले क्षेत्र	पालन की स्थिति
रॉक बी (Giant Honey Bee)	*Apis dorsata*	सबसे बड़ी मधुमक्खी, खुले स्थानों पर बड़े छत्ते बनाती है, आक्रामक स्वभाव	~ 30–36 किग्रा प्रति छत्ता/वर्ष	पूरे भारत मे जंगली रूप से पाई जाती है, विशेषकर वन क्षेत्रों,पहाड़ी इलाकों और ग्रामीण क्षेत्रों में	पालन कठिन, मुख्यतः जंगली
भारतीय छत्ता मधुमक्खी (Indian Hive Bee)	*Apis cerana Indica*	मध्यम आकार, घरों व बक्सों में आसानी से पाली जाती है	~ 6–8 किग्रा प्रति छत्ता/वर्ष	उत्तर भारत, पूर्वोत्तर दक्षिण भारत और हिमालयी क्षेत्र में व्यापक रूप से पाई जाती है, पारंपरिक पालन में प्रयुक्त	भारत में पारंपरिक रूप से पाली जाती है।
यूरोपीय/इटालियन बी (European/Italian Bee)	*Apis mellifera*	विदेशी प्रजाति, बड़े छत्ते, उच्च शहद उत्पादन	~25–40 किग्रा प्रति छत्ता/वर्ष	सरकार और निजी अपिकल्चर परियोजनाओं के तहत पंजाब, हरियाणा, उत्तर पद्रेश, हिमाचल प्रदेश और कश्मीर में पाली जाती है	आधुनिक अपिकल्चर में व्यापक रूप से पाली जाती है।
डैमर बी (Stingless Bee)	*Melipona irridipennis*	डंक रहित, छोटे छत्ते, औषधीय गुणों वाला शहद	~0.5–1 किग्रा प्रति छत्ता/वर्ष	दक्षिण भारत (केरल, तामिलनाडु कर्नाटक) और पूर्वोत्तर भारत में पाई जाती है: पारंपरिक औषधीय उपयोगों में प्रसिद्ध	पालन संभव, परंतु उत्पादन कम

3. मधुमक्खियों का सामाजिक संगठन

मधुमक्खियाँ प्रकृति के सबसे प्रमुख सामाजिक कीटों में गिनी जाती हैं। इनका जीवन पूरी तरह से सामूहिक संगठन और सहयोग पर आधारित होता है। मधुमक्खियों का समाज छत्ते में व्यवस्थित होता है, जहाँ हजारों सदस्य रहते हैं और प्रत्येक का कार्य निश्चित होता है। इस संगठन में श्रम-विभाजन, अनुशासन और सहयोग का अद्भुत उदाहरण देखने को मिलता है।

मधुमक्खियों के विभिन्न वर्गों का जीवन चक्र और कार्य

वर्ग (Caste)	अंडा अवस्था (Egg stage)	लार्वा अवस्था Larva)	प्यूपा अवस्था Pupa stage)	कुल विकास अवधि (Total development Period)	जीवनकाल (Adult longevity)	मुख्य कार्य (Work / Role)
रानी (Queen Bee)	~ 3 दिन	~ 5–6 दिन	~ 7–8 दिन	~ 15–16 दिन	~ 2–5 वर्ष (कभी-कभी अधिक)	अंडे देना, छत्ते की प्रजनन शक्ति बनाए रखना, फेरोमोन द्वारा सामाजिक व्यवस्था नियंत्रित करना
नर (Drone Bee)	~ 3 दिन	~ 6–7 दिन	~ 14 दिन	~ 23–24 दिन	2–3 माह (मुख्यतः प्रजनन तक)	रानी के साथ संयोग करना प्रजनन के बाद मर जाना, अन्य कार्यों में भाग नही लेते।
मजदूर (Worker Bee)	~ 3 दिन	~ 6 दिन	~ 12 दिन	~ 21 दिन	4–6 सप्ताह (कभी-कभी 2–3 माह तक)	भोजन संग्रह (पराग व रस) बच्चों की देखभाल, छत्ते की सफाई, रक्षा, शहद व मोम निर्माणः आयु के अनुसार कार्य बदलते हैं।

4. मधुमक्खियों का संचार

मधुमक्खियों का संचार प्राणीशास्त्र में अध्ययन का अत्यंत रोचक और महत्वपूण विषय है। हजारों मधुमक्खियाँ एक ही छत्ते में रहती हैं और फिर भी उनमें अनुशासन और व्यवस्था बनी रहती है। इसका कारण में उनकी अद्भुत संचार प्रणाली, जिसके माध्यम से वे भोजन की दिशा, दूरी, खतरे की सूचना और सामाजिक व्यवस्था को साझा करती हैं।

1. नृत्य भाषा (Dance Language)

मधुमक्खियाँ भोजन के स्रोत की जानकारी देने के लिए विशेष नृत्य करती है।

- **वागल डांस** (Waggle Dance) – जब भोजन दूर होता है, तो मजदूर मधुमक्खी आठ (8) की आकृति बनाते हुए नृत्य करती है। नृत्य की दिशा सूर्य के सापेक्ष भोजन की दिशा बताती है और नृत्य की गति भोजन की दूरी का संकेत देती है।
- **राउंड डांस** (Round Dance) – जब भोजन पास होता है, तो मधुमक्खी गोल–गोल घूमकर नृत्य करती है। इससे अन्य मधुमक्खियाँ समझ जाती हैं कि भोजन निकट ही है।

2. मधुमक्खियों के संचार में प्रयुक्त प्रमुख फेरोमोन

फेरोमोन का नाम	स्रोत	मुख्य कार्य/भूमिका
क्वीन मैंडिबुलर फेरोमोन (Queen Mandibular Pheromone, QMP)	रानी मधुमक्खी	मजदूर मधुमक्खियों को नियंत्रित करना, प्रजनन क्षमता बनाए रखना, छत्ते की सामाजिक व्यवस्था सुनिश्चित करना
आलार्म (Isopentyl acetate)	मजदूर मधुमक्खी (डंक ग्रंथियाँ)	खतरे की स्थिति में चेतावनी देना, अन्य मधुमक्खियों को रक्षा के लिए सक्रिय करना।
नासोनोव फेरोमोन (Nasonov-Pheromone)	मजदूर मधुमक्खी	भोजन स्रोत या छत्ते की दिशा बताना, समूह को एकत्रित करना
ब्रूड फेरोमोन (Brood Pheromone)	लार्वा	मजदूर मधुमक्खियों को लार्वा की देखभाल और भोजन देने के लिए प्रेरित करना
ड्रोन आकर्षण फेरोमेन	रानी मधुमक्खी	नर मधुमक्खियों को प्रजनन के लिए आकर्षित करना।

3. स्पर्श और कंपन संचार

मधुमक्खियाँ अपने शरीर और पंखों से कंपन उत्पन्न करती हैं। ये कंपन छते के भीतर अन्य मधुमक्खिों तक संदेश पहुँचाते हैं। उदाहरण के लिए, खतरे की स्थिति में पंखों की तेज कंपन से चेतावनी दी जाती है।

4. गंध और स्वाद संकेत

मधुमक्खियाँ फूलों से पराग और रस लाते समय गंध और स्वाद के माध्यम से भी संचार करती है। इससे अन्य मधुमक्खियाँ पहचान लेती है कि कौन–सा फूल उपुयक्त है।

5. सामाजिक कीटों का महत्व

मधुमक्खी जैसे सामाजिक कीट का संगठन और संचार प्राकृतिक सहयोग और अनुशासन का अद्भुत उदाहरण है। मधुमक्खी जैसे सामाजिक कीट पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। मधुमक्खियाँ परागण करती हैं, जिससे पौधों का प्रजनन होता है और कृषि उत्पादन बढ़ता है। इनकी जीवन शैली हमें यह सिखाती है कि सामूहिक कार्य और स्पष्ट संचार से जटिल समस्याओं का समाधान संभव संगठन, अनुशासन और सहयोग का अद्भुत उदाहरण हमें यह सिखाता है कि सामूहिक कार्य और स्पष्ट संचार से जटिल समस्याओं का समाधान संभव है। इनके संगठन और संचार से मानव समाज भी प्रेरणा ले सकता है।

कुछ देशों में जीन एडिटिंग को लेकर कठोर नियम हैं, जिससे कृषि में इसके व्यापक उपयोग में बाधा उत्पन्न होती है। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि इस तकनीक का अनियंत्रित उपयोग पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

बौद्धिक संपदा अधिकार और पेटेंट संबंधी मुद्दे भी CRISPR तकनीक के उपयोग को सीमित कर सकते है।

निष्कर्ष

तकनीक ने फसल सुधार के क्षेत्र में एक नई क्रांति ला दी है। यह तकनीक न केवल फसल उत्पादन को बढ़ाने में सहायक है, बल्कि खाद्य सुरक्षा, परिवर्तन, और पोषण संवर्धन जैसी चुनैतियों का समाधान करने में भी कारगर है। हालांकि, इसके सफल और नैतिक उपयोग के लिए उचित नीतियों और दिशानिर्देशों की आवश्यकता है। यदि इस तकनीक का सही दिशा में उपयोग किया जाए, तो यह कृषि के भविष्य को अधिक उन्नत और टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

एंटीऑसीडेंट की पौधों और मनुष्यों में महत्वपूर्ण भूमिका

डॉ. रजनी शुक्ला
वनस्पति विज्ञान विभाग
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

एंटीऑक्सीडेंट महत्वपूण अणु होते हैं जो मुक्त कणों को निष्क्रिय करते हैं। मुक्त कण अस्थिर यौगिक होते हैं जो कोशिकाओं को नुकसान पहुंचाते हैं, पुरानी बीमारियों (हृदय रोग, कैंसर) और समय से पहले बुढ़ापा लाते हैं। ये इलेक्ट्रान दान करके मुक्त कणों को नष्ट करने वाले के रूप में कार्य करते हैं, जिससे ये हानिकारक अणु स्थिर हो जाते है।

आहार में इनके प्रमुख स्त्रोतों में विटामिन ए,सी,ई और सेलेनियम जैसे खनिज शामिल हैं, जो फलों, सब्जियों और अनाजों में पाए जाते हैं।

पौधों में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट, सूखे तेज रोशनी या रोगजनकों जैसे पर्यावरणीय कारकों से उत्पन्न ऑक्सीडेटिव तनाव के खिलाफ एक महत्वपूर्ण रक्षा तंत्र के रूप में कार्य करते हैं। हाइड्रोजन पेरोक्साइड जैसे प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (आरओएस) (रिएक्टिव आक्सीजन स्पीशीज) को नष्ट करके, वे कोशिकीय क्षति को रोकते हैं, रेडॉक्स संतुलन बनाए रखते हैं और वृद्धि प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। इनमें एंजाइम (जैसे, सुपरऑसाइड डिसम्यूटेज) और गैर-एंजाइमेटिक यौगिक (जैसे, विटामिन, पॉलीफेनॉल, कैरोटीनॉयड) दोनों शामिल होते हैं।

पौधे एंटीऑसीडेट जैसे फेनोलिक्स (फ्लेवोनोइड्स, टैनिन), विटामिन (सी, ई) और कैरोटीनॉयड (बीटा-कैरोटीन) से भरपूर होते हैं, जो उन्हें तनाव, कीटों और क्षति से बचाते हैं, साथ ही हानिकारक फ्री रेडिकल्स को बेअसर करके मनुष्यों को स्वास्थ्य लाभ भी प्रदान करते हैं।

फलों, सब्जियों, मेवों, बीजों, जड़ी-बूटियो और मसालों में पाए जाने वाले ये यौगिक एक प्राकृतिक रक्षा तंत्र के रूप में कार्य करते हैं, जो हानिकारक कणों को नष्ट करते हैं या उनके निर्माण को रोकते हैं, और पौधों के अस्तित्व और मानव स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है।

पौधों में पाए जाने वाले एंटीऑक्सीडेट के प्रकार

- **फेनोलिक यौगिक** : इसमें फ्लेवोनाइड्स (बेरीज, चाय, चॉकलेट), फेनोलिक एसिड (कॉफी, साबुत अनाज), टैनिन और ग्रिन्स जैसे बड़े समूह शामिल हैं।
- **विटामिन** : विटामिन सी (एस्कॉर्बिक एसिड) और विटामिन ई (टोकोफेरोल्स/टोकोट्रिएनोल्स) क्रमशः प्रमुख जल – घुलनशील और बसा-घुलनशील एंटीऑसीडेंट है।
- **कैरोटीनॉयड** : बीटा – कैरोटीन (गाजर, पालक, आम) और लाइकोपीन (टमाटर) जैसे वर्णक।

- **एंजाइमेटिक एंटीऑक्सीडेंट :** सुपरऑक्साइड डिसम्यूटेस (एसओडी), (कैटालेज, ग्लूटाथयोन पेरोक्सीडेज)

पौधों में एंटीऑसीडेंट की भूमिकाः

- ROS **स्कैवेंजिंग और डिटॉक्सिफिकेशन** : एंटीऑक्सीडेंट जैसे एस्कॉर्बेट और ग्लूटाथियोन) चयापचय और प्रकाश संश्रलेषण के दौरान उत्पन्न होने वाले मुक्त कणों को बेअसर करके कोशिका अखंडता की रक्षा करते हैं।
- **तनाव अनुकूलन** : वे जैविक (रोगजनक) और अजैविक तनाव कारकों (सूखा, लवणता, यूवी विकिरण, तापमान की चरम सीमा) के अनुकूल होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- **रेडॉक्स विनियमन** : वे रेडॉक्स बफर के रूप में कार्य करते हैं जो कोशिका विभाजन, विस्स्तार और अंततः वृद्धावस्था सहित महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।
- **कीटों से बचाव** : फेनोलिक्स और अन्य एंटीऑक्सीडेंट रोगजनकों और शिकारियों के खिलाफ रक्षा तंत्र में कार्य करते हैं।
- **क्लोटोप्लास्ट संरक्षण** : कैरोटीनॉयड और टोकोफेरोल जैसे लिपोफिलिक एंटीऑक्सिडेंट प्रकाश - प्रेरित क्षति से प्रकाश संश्रलेषण तंत्र की रक्षा करते हैं।

मानव शरीर में एंटीऑसीडेंट की प्रमुख भूमिकाएँ :

मुक्त कणों को बेअसर करनाः शरीर द्वारा उत्पादित और उपभोग किए गए (ब्राह्) दोनों प्रकार के एंटीऑक्सिडेंट, प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (आरओएस) से होने वाले अत्यधिक नुकसान को रोकते हैं।

ऑक्सीडेटिव तनाव को रोकनाः ये कोशिकाएं डीएनए, प्रोटीन और कोशिका झिल्लियों को क्षति से बचाती हैं, जिससे ऑक्सीडेटिव तनाव नामक स्थिति को रोका जा सकता है, जो कैंसर, मधुमेह और हदय संबंधी समस्त्राओं जैसी दीर्घकालिक बीमारियों में योगदान देता है।

एंटी-एजिंग और सेलुलर मरम्मतः विटामिन सी ओर अन्य जैसे एंटीऑक्सीडेंट शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करने में महत्वपर्णू भूमिका निभाते हैं।

रोग की प्रगति को रोकनाः वे उम्र से संबंधित संज्ञानात्मक गिरावट और तंत्रिका अपक्षयी रोगों सहित विभिन्न स्वास्थ्य स्थितियों के विकास और प्रगति को रोकने में शामिल हैं।

प्रमुख स्त्रोत और प्रकार :

आहार संबंधी स्त्रोत : फल, सब्जियां, मेवे, मसाले और साबुत अनाज बीटा-कैरोटीन, लाइकोपीन, और विटामिन ए, सी और ई जैसे एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होते हैं।

शेष भाग पृष्ठ संख्या पर...

कृषि विपणन में डिजिटलीकरण

डॉ. उपमा त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर, (वाणिज्य विभाग)
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

कृषि में डिजिटल और आधुनिक विपणन (Marketing) से तात्पर्य इंटरनेट, सोशल मीडिया, ई–नाम (E-NAM)] ऐप्स और डेटा एनालिटिक्स जैसे आधुनिक उपकरणों का उपयोग करके कृषि उत्पादों को बेचने और बढ़ावा देने से है। यह मध्यस्थों को खत्म करके किसानों को सीधे उपभोक्ताओं से जोड़ता है। यह प्रक्रिया पारदर्शी है जो बेहतर मूल्य, समय पर सूचना और कुशल वितरण सुनिश्चित करती है।

कृषि में डिजिटल और आधुनिक विपणन के प्रमुख घटक :

- **ई कॉमर्स प्लेटफार्म** : वेबसाइटों और ऐप्स (जैसेः ई चौपाल, बिग बास्केट) के माध्यम से फसल की आनलाइन ब्रिकी।
- **सोशल मीडिया** : फेसबुक, इंस्टाग्राम और यूट्यूब का उपयोग कर सीधे ग्राहकों तक पहुंचना और उत्पादों का प्रचार करना।
- **ई–नाम** (E-NAM) Polatform : भारत सरकार का यह डिजिटल मंच जो किसानों को एक राष्ट्रीय बाजार प्रदान करता है।
- **डिजिटल भुगतान और बैंकिंग :** त्वरित और सुरक्षित लेनदेन के लिए यू.पी. आई. नेट बैंकिंग का उपयोग।
- **डेटा एनालिटिक्स :** का कार्य है व्यवसायें को अधिक कुशलता काम करने राजस्व बढ़ाने व समस्याओं को सुलझाने में मदत करना।

- **आधुनिक विपणन के लाभ :**
  - **मध्यस्थों का अंत :** किसान और खरीददार के बीच सीधा संबंध होने से मुनाफा बढ़ता है।
  - **बेहतर दाम :** किसानों को देश भर की मंडियों का भाव पता चल जाता है जिससे बेहतर मूल्य मिल जाता है।
  - **पहुँच :** उत्पादक अपने खेत से ही दूर शहरों में भी उत्पाद बेच सकते है।
  - **पारदर्शिता :** आधुनिक विपणन के अन्तरगत लेनदेन व वजन में पारदर्शिता बनी रहती है।
  - **सामदायिक जुड़ाव :** सोशल मीडिया के माध्यम से वफादार ग्राहक बनाना हालांकि इसमें ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेटकी कमी और डिजिटल साक्षरता की सुनौती भी मौजूद है
- **ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता कैसे सुधारे :**

इसमे कारगर रणनीति यह है कि सामुदायिक प्रौद्योगिकी केन्द्र स्थापित किये जाये जहाँ के निवासी कम्प्यूटर और हाई स्पीड – इंटरनेट का उपयोग कर सके। ये केंद्र प्रशिक्षण स्रोतों और कार्यशालाओं के लिए केन्द्र के रुप में कार्य कर सकते हैं, जिससे व्यक्तियों को सहायक वातावरण में अपने कौशल को सीखने और अभ्यास करने का अवसर मिल सके।

2023 तक ग्रामीण क्षेत्रो में इंटरनेट की पहुँच केवल 37% थी साथ ही, नेशनल एसोसिएशन ऑफ साफ्टवेयर एंड सर्विस कम्पनीज (नैसकॉम) के अनुसार भारत की डिजिटल साक्षरता दर लगभग 37% है, डिजिटल साक्षरता कौशल बढ़ाने के लिए आनलाइन संचार, सूचना, साक्षरता और डिजिटल सामग्री निर्माण जैसे विभिन्न क्षेत्रों में अपने ज्ञान और कौशल को विकसित करना होगा।

कृषि में डिजिटल प्रौद्योगिकी :

- शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच
- ई खेती
- पूसा कृषि मोबाइ ऐप
- एम किसान पोर्टल
- ई-पशुधन-हारपोर्टल की स्थापना
- डिजिटल साक्षरता अभियान
- ई. शान्ति , ई शान्ति , ई पंचायत आदि सभी योजनाएं
- ई. शक्ति, ई. पंचायत आदि सभी योजनाएं
- प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान के अन्तरगत शुरू की गई है जो कि स्थानीय स्तर पर महत्वपूर्ण व उपयोगी भूमिका निभा रही है।

निष्कर्ष :

डिजिटल तकनीक ग्रामीण भारत में बदलाव लाने का एक शक्तिशाली माध्यम है जो कृषि, शिक्षा, स्वास्थ सेवा और आर्थिक विकास में लगातार चुनौतियों के लिए अभिनव समाधान प्रदान करती है डिजिटल उपकरण कृषकों के जीवन को बदल रहे है और सतत विकास को बढ़ावा दे रहे है कृषि उत्पादकता में वृद्धि बेहतर शैक्षिक अवसरों की संभावना दर्शाती है प्रौद्योगिकी के उपयोग ने 21वीं सदी को परिभाषित किया है जैसे दुनियाँ क्वांटम कम्पयूटिंग कृत्रिम बुद्धिमता बिग डेटा और अन्य नई तकनीकों की ओर बढ़ रही है भारत के पास आईटी दिग्गज होने का लाभ उठाने और कृषि क्षेत्र में क्रांति लाने का एक जबरदस्त अवसर है। जैसे कि हरित क्रांति ने कृषि उत्पादन में वृद्धि की वैसे ही भारतीय कृषि उत्पादन में आईटीक्रांति अगला कदम होना चाहिये।

उत्तर प्रदेश में फ्लोरीकल्चर मिशन तथा ग्लैडिओलस की खेती की भूमिका

डॉ. दीप्ति श्रीवास्तव एवं डॉ.एस पी सिंह
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान विभाग)
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

फूलों की की खेती सजावटी उद्यानिकी का एक विशेष क्षेत्र है जो फूलों, सजावटी पौधों की खेती, विपणन और फूल सजावट की कला पर केंद्रित है। फूलों की खेती उत्तर प्रदेश के वाराणसी, मिर्जापुर, कन्नौज, जौनपुर, प्रयागराज, लखनऊ आदि जिलों में की जाती है। फूलों की नर्सरी के लिए सरकार द्वारा कई प्रकार का अनुदान दिया जाता हैं। लखनऊ भारत में स्थापित नौ मॉडल फूल उत्पादन केंद्रों में से एक है। कन्नौज में फूलों से इत्र तैयार किया जाता है। उत्तर प्रदेश में फ्लोरीकल्चर मिशन को तेजी से बढ़ाने के लिए सरकार के साथ-साथ नेशनल बोटैनिकल रिसर्च इंस्टीटयूट (NBRI) काम कर रही है। फ्लोरीकल्चर मिशन के तहत देश के 22 राज्यों मे यह मिशन चल रहा है। वहीं उत्तर प्रदेश में 20 क्लस्टर के माध्यम से फूलों की खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है। अब तक प्रदेश के 300 किसानों को इसका लाभ मिल चुका है। गुलाब के साथ-साथ ग्लेडियोलस की खेती को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। उत्तर प्रदेश में फ्लोरीकल्चर कॉरिडोर बनाने पर काम शुरू हो गया है। फूलों की खेती, फूलों और सजावटी पौधों की खेती ने उत्तर प्रदेश स्थान (यूपी) में महत्वपूर्ण महत्व प्राप्त कर लिया है। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय बागवानी डेटाबेस के अनुसर, 2024-25 के दौरान भारत में फूलों की खेती का क्षेत्र 322 हजार हेक्टेयर था, जिसमें 2658.79 हजार टन ढीले फूलों और 876.52 हजार टन कटे फूलों का उत्पादन हुआ।

यूपी के विकास पर प्रभाव :

1. आर्थिक विविधीकरण ओर राजस्व में वृद्धि :

विभिन्न जिलों में उगाए गए फूल स्थानयी समुदायों के लिए आर्थिक अवसर पैदा करते हैं, राज्य के कृषि क्षेत्र का व्यवसायों के लिए राजस्व प्रवाह बढ़ाती है।

राजस्व सृजन :

फूलों और संबंधित उत्पादों की बिक्री स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं में योगदान करती है, किसानों और व्यवसायें के लिए राजस्व प्रवाह बढ़ाती है।

2. सरकारी अनुदान और समर्थन :

वित्तीय सहायता : फूलों के नर्सरी के लिए सरकारी अनुदान उद्यमियों का समर्थन करते हैं, फूलों से संबंधित व्यवसायों की स्थापना को प्रोत्साहित करते हैं।

कौशल विकास : सरकार द्वारा वित्तपोषित प्रशिक्षण कार्यक्रम फूलों की खेती करने वालों के कौशल को बढ़ाते हैं, उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद सुनिश्चित करते हैं और बाजार की मांग बढ़ाते हैं।

सांस्कृतिक एवं उद्यौगिक महत्व

3. पारंपरिक इत्र उद्योग :

इत्र सहायता : कन्नौज का फूल आधारित इत्र उद्योग पारंपरिक तकनीकों को संरक्षित करता है, सांस्कृतिक विरासत को आर्थक विकास से जोड़ता है।

4. वैश्रिवक सहायता : स्थानीय फूलों से प्राप्त अनूठी सुगंध वैश्रिव इत्र बाजार में भारत की प्रतिष्ठा को बढ़ाती है।

5. पुष्प पर्यटन और स्थानीय व्यवसाय : फलते-फूलते फूल के खेत पर्यटकों के आकर्षण बन जाते हैं, जो आंगुतकों को फूलों की सुंदरता और सुगंध में रूचि रखते हैं।

6. स्थानीय उद्यम : वाराणसी और मिर्जापुर जैसे जिलों में स्थानीय उद्यमी स्थानीय अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करते हुए फूल – आधारित व्यवसाय स्थापित करते हैं।

7. रोजगार के अवसर और आजीविका में वृद्धि :

ग्रामीण रोजगार :

रोजगार सृजन : फूलों की खेती की गतिविधयां ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा करती हैं, बेरोजगारी और गरीबी दर को कम करती हैं।

महिलाओं को सशक्त बनाना : फूलों की खेती अक्सर महिलाओं को उत्पादन के विभिन्न चरणों में शामिल करती है, जिससे उन्हें आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त बनया जाता है।

महिलाओं को सशक्त बनाना : फूलों की खेती अक्सर महिलाओं को उत्पादन के विभिन्न चरणों में शामिल करती है, जिससे उन्हें आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त बनाया जाता है।

कौशल संवर्धन :

प्रशिक्षण पहल : सरकारी एजेंसियों और अनुसंधान संस्थानों के बीच सहयोगात्मक कार्यक्रम प्रशिक्षण प्रदान करते हैं, जिससे किसानों के फूलों की खेती के कौशल में वृद्धि होती है।

उद्यमिता विकास : कौशल विकास कार्यक्रम उद्यमिता को प्रोत्साहित करते हैं, जिससे फूलों से संबंधित व्यवसायें और स्टार्टअप की स्थापना होती है।

बाजार की मांग : उत्तर प्रदेश में घरेलू खपत और धार्मिक समारोह दोनों के लिए फूलों की मांग अधिक है। फूलों का उपयोग त्योहरों, शादियों, धार्मिक अनुष्ठानों और सजावटी उद्देश्यों में बड़े पैमाने पर किया जाता है। स्थानीय बाजार फूल उत्पादकों को ताजे फूलों की मांग को पूरा करने का अवसर प्रदान करता है।

मूल्यवर्धन और प्रसंस्करण : उत्तर प्रदेश में फूलों की खेती के क्षेत्र में मूल्यवर्धित गतिविधियों और प्रसंस्करण इकाइयों का विकास देखा गया है। फूलों के प्रसंस्करण में फूलों की गुणवत्ता और दीघार्यु सुनिश्चित करने के लिए ग्रेडिंग, छंटाई, पैकेजिंग और संरक्षण तकनीक जैसी गतिविधियाँ शामिल हैं। मूल्य संवर्धन और प्रसंस्करण सहायक उद्यागों के विकास

में योगदान देता है और उत्पादित फूलों का मूल्य बढ़ाता है। उत्तर प्रदेश में फूलों की खेती न केवल राज्य की अर्थव्यवस्था में योगदान देती है, बल्कि पर्यावरण में सौंदर्य मूल्य भी जोड़ती है और सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं में भूमिका निभाती है। राज्य सरकार के समर्थन, अनुसंधान प्रयासों और बाजार विकास पहलों ने उत्तर प्रदेश में फूलों की खेती क्षेत्र की वृद्धि और विकास में मदद की है।

उत्तर प्रदेश में ग्लेडियोलस की खेती के लिए उपयुक्त मिट्टी जलवायु और तापमान :

ग्लेडियोलस के पौधों को पनपने के लिए मध्यम उसके पौधों को शुरूआत में अंकुरित होने के लिए सही तापमान की आवश्यकता होती है। ग्लेडियोलस की खेती में अच्छी जल निकासी वाली जगहों की आवश्यकता होती है। ग्लेडियोलस की अच्छी पैदावार के लिए बलुई दोमट मिट्टी को सबसे अच्छा माना आवश्यकता होती है। ग्लेडियोलस की अच्छीपैदावार के लिए बलुई दोमट मिट्टी को सबसे अच्छा माना जाता है। इस संबंध में पी.एच. मान 5.5 से 6.5 के बीच होन चाहिए, ग्लेडियोलस कीखेती के लिए गर्म जलवायु अनुकूल मानी जाती है। अगेती खेती सर्दी और गर्मी दोने में की जा सकती है, लेकिन सर्द में ओस के कारण फूलों पर पानी जमा हो जाता, है जिससे फूलों के खराब होने का खतरा बढ़ जाता है।

जब फूल खिलने लगते हैं तो उस दौरान होने वाली बारिश डनहें नुकसान पहुंचाती है, क्योंकि इससे फूल नष्ट हो जाते हैं। गलेडियोलस के पौधों को पनपने के लिए सीधी धूप की आवश्यकता होती है। इसके बाद पौधे की वृद्धि के लिए 25 डिग्री से 16 डिग्री के बीच का तापमान उपयुक्त होता है ग्लेडियोलस के फूल अधिकतम 40 डिग्री तापमान सहन कर सकते है।

ग्लेडियोलस की उन्न्त किस्में (Gladiouls Varieties)

सिल्विया किस्म के पौधे : (इस पौधे के एक डंठल में 12 से 15 फूल पाए जाते हैं। इस मामलें में फूल सुनहरे पीले रंग के होते हैं। उसके पौधे रापेण के लगभग 110 दिन बाद फल देने के लिए तैयार हो जाते

हर मेजेस्टी किस्म के पौधे : इन प्रजातियों में पौधे का तना लगभग ढाई फीट लंबा होता है और एक डंठल में 15 से 17 फूल लगते हैं। परिणामी फूल पीले होते हैं। इसेक पौधे बुआई के 100 से 115 दिन के बीच फल देना शुरू कर देते हैं,

सफेद समृद्धि किस्म के पौधे : इन पौधों में सफेद फूल होते हैं यह बीज रोपण के लगभग 110 से 120 दिन बाद फूल देने के लिए तैयार हो जाता है। इसकी शाखाओं पर लगभग 17 फूल पाए जाते हैं और प्रत्येक शाखा लगभग ढाई फीट लंबी होती है।

अमेरिकन ब्यूटी किस्म के पौधे : ऐसे पौधों रोपाई के तीन महीने बाद फल देना शुरू कर देते हैं। एक डंठल में 10 से 12 फूल होते हैं, ये फूल पीले रंग के होते हैं। इसकी शाखाएँ ती फुट लम्बी होती हैं।

संस्कार किस्म के पौधे : इस पौधे की शाखांए करीब डेढ़ फुट लंबी होती हैं। इसके प्रत्येक पौधे में लगभग 80 से 90 पंक्तियाँ तैयार की जाती हैं। इसमें 15 से 17 छोटे-छोटे फूल पाए जाते है। इसका रंग सफेद होता है और बीजों में 120 दिनों के बाद फूल आना शुरू हो जाता हैं

ड्रैगन फ्रूट की खेती (Cultivation of Dragon Fruit)

डॉ. जशकरन सिंह एवं डॉ लल्लन प्रसाद यादव
सहायक प्राध्यापक, उद्यान विज्ञान विभाग,
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

ड्रैगन फ्रूट, हिलोसेरस अनडाटस (Hylocereus undatus) केक्टेसि (Cactaceae) परिवार से संबंधित है। इसे होनोलुलु रानी व पिताया फलके के नाम से भी जाना जाता हैं। ड्रैगन फ्रूट एक प्रकार का विदेशी – बारहमासी फल होता है यह किसानों की आमदनी को दोगुना करता है बल्कि अपनी आवश्यकता के अनुसार खुद ही पानी का संचय कर लेता है। और पहले ही साल से फलों का उत्पादन शुरू हो जाता है। आकर्षक दिखने के कारण इस फल की बाजार में काफी ज्यादा मांग रहती है। यह संतरा, आम, पपीता, केला, सेब आदि की तुलना में अधिक पौष्टिक और फायदेमंद फल है, ड्रैगन फ्रूट बाहर से अनन्नास की भाति दिखाई देता है, लेकिन अंदर से गूदा सफेद और काले रंग के छोटे-छोटे बीजों से भरा हुआ नाशपती या कीवी की तरह होता है। ड्रैगन फ्रूट के लाजवाब स्वाद और लाभकारी फायदों के कारण भारत में भी इसकी मांग काफी बढ़ गयी है। यही वजह है कि हमारे देश में पंजाब, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश आदि राज्यों में इसका सर्वाधिक उत्पादन किया जा रहा है। ड्रैगन फ्रूट का उपयोग ताजे फल के रूप में करने के साथ-साथ रस, जैम तथा आइसक्रीम के रूप में भी किया जाता है। यह फल खाने में तो स्वादिष्ट लगता है।

औषधीय गुण (Medicinal properties)

ड्रैगन फ्रूट में अधिक मात्रा में विटामिन 'सी', फ्लेवोनोइड और फाइबर पाए जाने के कारण यह घावों को जल्दी भरने, रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने एवं हदय संबंधित समस्याओं से बचाने के साथ-साथ भोजन को पचाने में भी सहायक होता है। यह आँखों की दृष्टि में सुधार करने के साथ ही त्वचा को चिकना और मॉइस्चराइज करता है। इसके नियमित सेवन से खांसी और अस्थमा से लड़ने में ममद मिलता है। फलों में कैल्शियम, पोटेशियम कई प्रकार के एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन सी, विटामिन बी1, बी2 और बी3 पाए जाते है, जो ऊर्जा उत्पादन, कार्बोहाड्रेड चयापचय, भूख बढ़ाने, खराब कोलेस्ट्रॉल, पेट के कैंसर, गठिया और मधुमेह के स्तर को कम करने के अलावा कोशिकाओं को ठीक कर शरीर को मजबूती प्रदान करते हैं, ड्रैगन फ्रूट फाइबर युक्त होता है जो आपके शरीर में आवश्यक पोषक तत्व की कमियों को पूरा करता है इसके साथ-साथ दंत स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए भी इसको औषधीय रूप में प्रयोग किया जाता है।

जलवायु (Climate)

ड्रैगन फ्रूट आमतौर पर भार में गर्मियों के महीनों के दौरान लगाया जाता है जो मार्च से जून तक होता है। इसकी खेती के लिए उष्ण जलवायु और 20 से 36 डिग्री सेल्सियस तापमान सर्वोतम है। 40 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक और 0 डिग्री सेंटीग्रेड से कम तापमान होने पर इसके फूल झड़ने लगते है और पोधे पीले पड़ जाते हैं। इसकी खेती के लिए 50 सेंटीमीटर वार्षिक वर्षा की आवश्यकता होती है बहुत अधिक सूर्य की रोशनी ड्रैगन फ्रूट के पौधे को नुकसान पहुंचा सकती है।

भूमि का चयन (Selection of soil :

ड्रैगन फ्रूट की खेती रेतीली दोमट मिट्टी से लेकर दोमट मिट्टी में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। बेहतर उपज प्राप्त करने के लिए कार्बनिक पदार्थ से भरपूर उचित जल निकास युक्त काली मिटटी में इसकी खेती करें। मिट्टी का पीएच स्तर 5.5 से 7 के बीच होना चाहिए।

किस्म (Cultivars)

ड्रैगन फ्रूट की मुख्यतः 3 प्रजाति होती है। जिनमें सफेद ड्रैगन फ्रूट, लाल ड्रैगन फ्रूट एवं पीला ड्रैगन फ्रूट शामिल है। सफेद ड्रैगन फ्रूट के फल बाहर से गहरे गुलाबी और अंदर से सफेद रंग के होते हैं। लाल ड्रैगन फ्रूट प्रजाति के फल बाहर एवं अंदर से गहरे गुलाबी रंग के होते हैं। पीला ड्रैगन फ्रूट भारत में बहुत कम देखने को मिलता है। इस प्रजाति के फल बाहर से पीले और अंदर से सफेद रंग के होते हैं। इसकी अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए व्हाइट ड्रैगन 1, रेड ड्रैगन 1, रॉयल रैड, सिंपल रैड, आदि किस्मों का चयन कर सकते हैं।

खेत की तैयारी (Preparation of land)

खेत को तैयार करने के लिए 2-3 बार जुताई करें। जुताई के बाद खेत में पाटा लगाकर खेत की मिट्टी को समतल एवं भुरभुरी बना लें। पौधों के कटिंग की रोपाई के लिए 2-3 मीटर की दूरी पर 60 सेंटीमीटर चौड़े, 60 सेंटीमीटर लम्बे और 60 सेंटीमीटर गहरे गड्डे तैयार करें।

प्रवर्धन (Propagation)

इसकी खेती पौधों की कटिंग लगा कर की जाती है। ड्रैगन फ्रूट के पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए 15 से 30 सेंटीमीटर स्लाइस का उपयोग करना चाहिए कटिंग करने के बाद पौधों पर फफूंद नाशक लगा देना चाहिए। बीज की बुवाई के द्वारा भी इसकी खेती की जा सकती है। बीज की बुवाई के द्वारा खेती करने पर फल आने में अधीक समय लगता है। इसलिए व्यावसायिक खेती के लिए पौधों की कटिंग लगाना बेहतर है। रोपाई के लिए करीब 20 सेंटीमीटर लंबी कटिंग का प्रयोग करें। इसको खेत में लगाने से पहले गमलों में लगाया जाता है। इसके लिए गमलों में सूखे गोबर, बलुई मृदा तथा रेत को 1:1:2 के अनुपात से भरकर छाया में रख दिया जाता है।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

ड्रैगन फ्रूट का पौधारोपण वर्गाकार विधि में किया जाता है तथा अधिक उत्पादन के लिए पौधे से पौधे एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 2x2 या 3x3 मीटर रखते हैं। गढ्ढे का आकार 60x60x60 सोमी रखते हैं। ड्रैंगन फ्रूट से अधिकतम उत्पादन लेने के लिए एक हैक्टर भूमि में लगभग 1111 पौधे या प्रति एकड़ खेत में करीब 410 पौधे लगाए जा सकते हैं।

खाद एवं उर्वरक (Manure and Fertilizer)

अधिक उत्पादन लेने के लिए प्रत्येक पौधे को अच्छी सड़ी हुई 10 से 15 किग्रा गोबर या कम्पोस्ट खाद देनी चाहिए। इसके अलावा लगभग 250 ग्राम नीम की खली, 5-7 ग्राम बाविस्टिन प्रत्येक गढ्ढे में अच्छी तरह मिला देने से पौधों में मृदाजनित रोग एंव कीट नहीं लगते हैं। एक वर्ष के पौधों में प्रति वर्ष 10-15 किलोग्राम गोबर की खाद, 650 ग्राम यूरिया, 1.25 किलोग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट एसएसी (और 450 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश) (एमओपी) का मिश्रण

बनाकर पौधों को फूल आने से पहले अप्रैल में फल विकास अवस्था तथा जुलाई–अगस्त और फल तुड़ाई के बाद दिसंबर में देना चाहिए। 2 वर्षो तक प्रत्येक पौधों में 300 ग्राम नाइट्रोजन, 200 ग्राम फास्फोरस और 200 ग्राम पोटेशियम का प्रयोग करना चाहिए। पूरी तरह से परिपक्व पौधे के लिए 550 ग्राम नाइट्रोजन, 750 ग्राम फास्फोरस और 300 ग्राम पोटेशियम प्रतिवर्ष डालना चाहिए।

सिंचाई (Irrigation)

ड्रैगन फ्रूट के पौधों को अन्य फसलों की तुलना में सिंचाई की आवश्यकता कम होती है। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए पौधों की कटिंग की रोपाई के बाद पहली सिंचाई करें। इसके अलावा पौधों में फूल एवं फल आने के समय भी सिंचाई करें। वर्षा होने पर फसल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती हैं अन्य मौसम में आवश्यकता के अनुसार सिंचाई करें।

सधाई और कृन्तन (Training and pruning)

संधाई और कृन्तन पौधों की सीधी वृद्धि एवं विकास के लिए अपरिपक्व पादप तनों को इस खंभों से बांधकर, पाश्रिवक शाखाओं को सीमित रखते हुए दो से तीन मुख्य तनों को बढ़ने के लिए छोड़ देना चाहिए इसके बाद इसके ढांचे को गोलाकार रूप में सुरक्षित कर लेना चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन (Weed mangement)

ड्रैगन फ्रूट के पौधे के बीच दूरी अधिक होने के कारण खेत में खरपतवारों की समस्या हो सकती है। खरतपवारों से निजात पाने के लिए आवश्यकतानुसार निराई–गुड़ाई करें।

फलों की तुड़ाई (Harvesting of fruits)

ड्रैगन फ्रूट के पौधों में पहले वर्ष से ही फल आने शुरू हो जाते है। सामान्यतः मई–जून महीने मे ंपौधों में फूल खिलने लगते हैं और अगस्त से दिसंबर तक फल लगते हैं। इसकी कटिंग लगाने के करीब 16 महीने बाद पौधों मे ंफल आनें लगते हैं। करीब 18 महीने बाद फलों का रंग गुलाबी हो जाता है और फल पक कर तैयार हो जाते हैं। फलों की तुड़ाई का सही समय रंग परिवर्तित होने के तीन–चार दिनों बाद होता है फलों की तुड़ाई सिकेटियर या हाथ से की जाती है।

रोग एवं कीट प्रबंधन (Disease and insect management)

सामान्यतः ड्रैगन फ्रूट में कीट और व्याधियों का प्रकोप कम होता है, फिर भी इसमें एन्थ्रेक्नोज रोग व थ्रिप्स कीट का प्रकोप देखा गया है, एंथ्रनक्रोज रोग के नियंत्रण के लिए मैन्कोजेब दवा के घोल का 0.25 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें, थ्रिप्स के लिए एसीफेट का 0.1 प्रतिशत की दर से छिड़काव करना चाहिए।

"प्रिसिजन फार्मिंग: एक-एक पौधे की देखभाल में आर्टिफिशियल इटेलिजेंस की भूमिका"

डॉ. राजीव कृष्ण बाजपेयी,
सहायक प्राध्यापक, एग्रीइंफो0, कम्पयूटर विभाग
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

भारतीय कृषि आज एक निर्णायक दौर से गुजर रही है। सीमित भूमि संसाधन, जल संकट, जलवायु परिवर्तन, बढ़ती उत्पादन लागत और घटती उत्पादकता ने पारंपरिक खेती प्रणालियों की सीमाएँ उजागर कर दी हैं। ऐसे परिदृश्य में "प्रिसिजन फार्मिंग (Precision Farming) एक व्यवहारिक और वैज्ञानिक समाधान के रूप में उभर कर सामने आई है। यह आधुनिक कृषि प्रणाली डिजिटल तकनीक और "आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI)" के माध्यम से फसल प्रबंधन को अधिक सटीक, टिकाऊ और लाभकारी बनाती है।

प्रिसिजन फार्मिंग की अवधारणा –

प्रिसिजन फार्मिंग का मूल सिद्धांत है "कम संसाधनों में अधिकतम गौर गुणवत्तापूर्ण उत्पादन" । इसमें खेत को एक समान इकाई मानने के बजाय, उसे छोटे–छोटे प्रबंधन क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक क्षेत्र अथवा पौधे की अलग–अलग आवश्यकताओं को समझकर उसी अनुसार कृषि क्रियाएँ की जाती है।

इस प्रणाली में निम्न तकनीकों को उपयोग किया जाता है।

- आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI)
- मशीन लर्निंग
- IoT आधारित सेंसर
- ड्रोन और सैटेलाइट इमेजरी
- डेटा एनालिटिक्स

इनके माध्यम से खेती अनुमान आधारित न होकर "डेटा–संचालित (Data driven) बन जाती है।

(AI) आधारित पौधा–स्तरीय देखभाल प्रणाली

1. **मिट्टी स्वास्थ्य का सटीक विश्लेषण –** AI सक्षम सेंसर मिट्टी की नमी, पोषक तत्वों (नाइट्रोजन), फास्फोरस, पोटाश), तापमान और pH स्तर का निरंतर विश्लेषण करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि किस क्षेत्र में कौन–सा पोषक तत्व कम या अधिक है। इससे किसानों को उर्वरकों का संतुलित उपयोग करना पड़ता है, जिससे लागत में कमी आती है और मिट्टी की दर्घकालिक उर्वरताक एवं संरक्षणता बढ़ती है।

2. **स्मार्ट और नियंत्रित सिंचाई –** AI आधारित सिंचाई प्रणाली मौसम पूर्वानुमान, मिट्ट की नमी और फसल की अवस्था को ध्यान में रखकर स्वतः निर्णय लेती है। जिसके उपयोग से न सिर्फ 30 से 40 प्रतिशत तक जल संरक्षण होता है बल्कि सूखा एवं जलभराव दोनों स्थितियों से सुरक्षा एवं ऊर्जा की बचत होती है।

3. ड्रोन एवं सैटेलाइट द्वारा फसल निगरानी – ड्रोन से प्राप्त उच्च गुणवत्ता वाली इमेजरी का AI द्वारा विश्लेषण कर फल की स्थिति का आकलन किया जाता है। इससे रोग, कीट संक्रमण पोषक तत्वों की कमी और जल तनाव जैसे कारकों की समय रहते पहचान संभव होती है। इससे किसानों को पौधों के लक्षित उपचार (Targeted Inervention) में सहायता मिलती है जिससे रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग कम होता हे और उत्पादन हानि में कमी आती है।

4. रोग और कीट पहचान में AI – AI ड्रोन आधारित मोबाइल एप्लिकेशन फसल की तस्वीर के माध्यम से रोग या कीट की पहचान कर उचित नियंत्रण उपाय सुझाते है। यह मोबाइल एप्लिकेशन त्वरित निर्णय लेने, सही दवा का चयन करने में सहायता प्रदान करती है तथा फसल सुरक्षा हेतु व्यवहारिक ज्ञान उपलब्ध कराती है।

5. फसल योजना एवं उत्पादन पूर्वानुमान में AI – AI ऐतिहासिक कृषि डेटा, मौसम पैटर्न और बाजार रूझानों का विश्लेषण कर किसानों को उपयुक्त फसल चयन, बुवाई समय और संभावित उत्पादन के बारे में मार्गदर्शन प्रदान करता है।

भारत में प्रिसिजन फार्मिंग की स्थिति –

भारत में डिजिटल कृषि को बढ़ावा देने के लिए सरकार और निजी क्षेत्र दोनों सक्रिय है। AgriTech स्टार्टअप्स जैसे CropIn, Dehaat, Gramophone, Fasal इत्यादि प्रिसिजन फार्मिंग समाधान प्रदान कर रहे हैं। इसे अतिरिक्त सरकार द्वारा डिजिटल एग्रीकल्चर मिशन (AgriStack), किसान ड्रोन योजना, डेटा आधारित कृषि नीतियाँ प्रारंभ की गई हैं, जो इस क्षेत्र को गति दे रही हैं।

छोटे और सीमांत किसानों के संदर्भ में प्रिसिजन फार्मिंग –

भारत में अधिकांश किसान छोटे और सीमांत श्रेणी में आते हैं। प्रिसिजन फार्मिंग अपनाने को लेकर इन किसानों में मुख्य चिंताएँ है तकनीकी ज्ञान की कमी, प्रारंभिक लागत और डिजिटल साक्षरता न होना। इन किसानों मे प्रिसिजन फार्मिंग के प्रति रूचि बढ़ाने हेतु सरकार को सब्सिडी और प्रोत्साहन का प्राविधान करना चाहिये, FPO आधारित सामूहिक तकनीक उपयोग कराना, किसानों की आसान भाषा में समझाने हेतु स्थानीय भाषा में डिजिटल प्लेटफार्म बनाकर किसानों में रूझान बढ़ाया जा सकता है। ड्रोन तकनीक मंहगी होने के कारण Drone-as a-Service मॉडल अपनाकर इसे सस्ता एवं सुगमता से उपलब्ध कराया जाना चाहिये ।

निष्कर्ष –

प्रिसिजन फार्मिंग भारतीय कृषि के लिए केवल एक तकनीकी नवाचार नहीं, बल्कि भविष्य की आवश्कता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के माध्यम से पौधा–स्तरीय देखभाल उत्पादन क्षमता बढ़ाने, लागत घटाने और पर्यावरण संरक्षण कर तीनों लक्ष्यों को एक साथ साधने में सक्षम है। यदि नीति, प्रशिक्षण और बुनियादी ढँाचे का समुचित विकास किया जाए, तो प्रिसिजन फार्मिंग भारत कों उत्पादक, टिकाऊ और तकनीकी से भारत को एक सक्षम कृषि राष्ट्र बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

पशुओं में थनैला रोग के कारण, लक्षण, उपचार एवं बचाव

डॉ. सुधीर कुमार सिंह राघुवंशी एवं श्री धीरेन्द्र कुमार सिंह
पशुपालन एव दुग्ध विज्ञान विभाग
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

थनैला रोग मादा पशुओं में जीवाणुओं, द्वारा फैलने वाला थनो का संक्रमाक रोग है, जो पशुओं को गंदे, गीले और कीचड़ भरे स्थान पर रखने से होता है। थन में चोट लगने, दूध पीते समय बछड़े या बछिया का दांत लगने या गलत तरीके से दूध दुहने से इस रोग की संभवना बढ़ती है यह रोग ज्यादातर अधिक दूध देने वाली गायों एवं भैसों में अधिक होता है। यदि प्रारंभ में इस रोग की देखभाल उचित रूप से नहीं की जाती है तो पशुओं के थन को बेकार करके सुखा देती है। इस रोग से पशुमरते तो नहीं है परंतु थन सूख कर पूर्ण रूप से बेकार हो जाते हैं।

कारण : इस रोग का मुख्य कारण जीवाणु होते हैं तथा पशुओं पर 70% जीवाणु का प्रभाव होता है। इसके अलावा 2% ईस्ट एवं मोल्ड एवं 28% शारीरिक चोट एवं खराब मौसम जैसे कुछ अज्ञात कारक भी इसके लिए उत्तरदाई हैं। थनैला रोग से संबंधित मुख्य जीवाणु निम्नलिखित हैं स्ट्रैप्टॉकोक्कस, स्टेफिलोकोक्कस, कोरिनीबैक्टीरियम पायोजेनिस, माइकोबैक्टेरियम ट्यूबरक्लोसिस, ई.कोलाई।

लक्षण : थन या आयन में सूजन तथा दर्द होता है और कड़ भी हो जाता है, बाद में थन में गांठ भी पड़ सकती है। दूध फट सा जाता है और फिर खून या मवाद पड़ जाता है। कभी–कभी दूध पानी जैसे पतला हो जाता है एवं दूध में छिछड़े अथवा रक्त मिश्रित दूधआने लगता हैं।

रोग परीक्षण :

सामान्य दूध का 6.0 से 6.8 परंतु थनैला रोग से युक्त दूध का पी.एच 7.4 हो जाता है। दूध को चखकर जांच : सामान्य तौर पर दूध में 0.12 प्रतिशत सोडियम क्लोराइड होता है लेकिन थनैला रोग से पीड़ित पशु के दूध में इसकी मात्रा 1.4% या अधिक हो जाती है।

थनैला रोग की चिकित्सा :

रोग निदान शीघ्र हो जाने पर पशु का उपचार संभव है परंतु यदि जीवाणु अयन के अंदर पहुंचकर अपना समुचित विकास कर चुके हैं तो इसकी सफल चिकित्सा नहीं हो पाती है। 1:1000 एक्रीफ्लेविन घोल को थन के अंदर इंजेक्शन देने से लाभ होता है। सिप्रोफ्लाक्सासिन बोलस खिलाने से आशातीत लाभ होता है। मैंस्टोडिन स्प्रे या विसपरेक स्प्रे का छिड़काव करने पर सूजन और दर्द कम हो जाता है।

प्रतिजैविक औषधियां :

इस रोग में एनरोफ्लाक्ससिन, पेनिसिलिन, जेंटामाइसिन, पेराजान+सलबैकटम, पेंडिस्ट्रिन, मेस्टीवर्क, मेस्टीसिलिन थनैला रोग को ठीक करने के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। परंतु कोई भी औषधि या प्रतिजैविक औषधि खिलाने से पूर्व पशु चिकित्सक से सलाह अवश्य लें।

रोकथाम : यह रोग अत्यधिक कुप्रबंधन से फैलता है, अतः ग्वालों के हाथों, कपड़ों, दूध निकालने वाली मशीनों, बर्तनों, पशुशाला, तथा अयन की स्वच्छता पर विशेष ध्यान देकर बचाव किया जा सकता है। रोग यदि फैल रहा हो तो रोगी अथवा स्वस्थ पशुओं में अलगाव की विधि अपनानी चाहिए। थन अथवा अयन पर लगी हुई चोटों का अतिशीघ्र उपचार करना चाहिए एवं एक भी पशु की आशंका होने पर सभी दुधारू पशुओं के दूध का परीक्षण करना चाहिए। थनैला की आशंका होते ही तत्काल उसका उपचार करना जरूरी है अन्यथा यह बीमारी चारों थनों को संक्रमित कर पशु को हमेशा के लिए बेकार कर देती है। कभी-कभी थनैला के साथ अयन में क्षय रोग के जीवाणु प्रविष्ट होकर इसे और भी जटिल बना देते है। इस बीमारी का टीका ना होने का कारण रोकथाम के निम्नलिखित उपायों पर समुचित ध्यान देना चाहिए-

1. थनों को बाहरी चोट लगने से बचाएं।
2. पशु घर के फर्श को सूखा रखें, समय-समय पर चूने का छिड़काव करें और मक्खियों पर नियंत्रण करें। दूध दोहने के लिए पशु को दूसरे स्वच्छ स्थान पर ले जाएं ।
3. दूध दोहन से पहले थानों को खूब अच्छी तरह से साफ पानी सो धानो ना भूले उसके पश्चात पोटेशियम परमैंगनेट 1:1000 के घोल से हाथ तथा थन धोकर दूध निकालने से पशु को यह रोग लगने की संभावना कम होती है
4. दूध जल्दी से और एक बार में ही दोहन करें अधिक समय न लगाएं।
5. दूध दुहने से पूर्व साबुन से अपने हाथ अच्छी तरह से धो लें।
6. थनैला बीमारी से ग्रस्त थन का दूध सबसे अंत में अलग बर्तन में दोहे तथा उसे उपयोग में ना लाएं।
7. घर में स्वस्थ पशुओं को दूध पहले और बीमार पशु का दूध अंत में दोहे ।
8. दूध दोहन के पश्चात थनों की कीटाणुनाशक घोल जैसे कि आयोडोफोर या पोटेशियम परमैंगनेट के घोल में डुबाएं या घोल का स्प्रे करें।
9. दूध दोहने के बाद थन वाली (टीट कैनाल) कुछ देर तक खुली रहती है व इस समय पशु के फर्श पर बैठ जाने से रोग के जीवाणु थन नली के अंदर प्रवेश पाकर बीमारी फैलाते हैं। अतः दूध देने के तुरंत बाद दुधारू पशुओं को आहार दें जिससे कि वह कम से कम आधा घंटा फर्श पर न बैठे।
10. दुधारू पशुओं के दूध की समय-समय पर (कम से कम माह में एक बार) मैसटेकस्ट कागज से जांच करते रहें। पशु के रोग से प्रभावित थन में दवा चढ़वांए । दूध रूकते ही थनैला रोग से बचाने वाली दवा अवश्य चढ़वाएं।
11. दूध सेखते ही थनैला रोग से बचाने वाली औषधि थनों में अवश्य चढ़ाएं।
12. पशु को विटामिन ई के साथ सेलेनियम लवण खिलाने से थनैला के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

उपचार और परामर्श के लिए नजदीकी पशु चिकित्स से तत्काल सलाह लेनी चाहिए। थनैला ग्रसित पशु के दूध का उपचार के दौरान तथा उपचार के समाप्त होने के कम से कम 4 दिन बाद तक नो तो उपयोग मे लाएं और नहीं विक्रय करें क्योंकि इस दूध के पीने से मनुष्यों में गले (सेप्टिक सोर थ्रेट) व पेट की बीमारियां हो सकती हैं।

सीमांत किसानों के लिए वर्टिकल फार्मिंग वरदान

कमला कान्त, के.डी.सिंह एवं उरूज आलम सिद्दीकी
कृषि प्रसार विभाग
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

वर्टिकल फार्मिंग (Vertical Farming) सीमांत और छोटे किसानों के लिए एक वरदान है, क्योंकि यह बहुत कम जमीन पर ऊर्ध्वाधर परतें (Vertical layers) में खेती करने की आधुनिक तकनीक है। कम भूमि और पानी के इष्टतम उपयोग के साथ, यह 95% कम पानी की खपत और कीटनाशकों से मुक्त, साल भर (मौसम के बिना) उत्पादकता प्रदान करती है। यह तकनीक शहरी व अर्ध–शहरी क्षेत्रों में आय बढ़ाने और खाद्य सुरक्षा के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है।

फल व सब्जी के मामले में भारत दुनिया के सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है। भारत में एक खास तरह की खेती को तेयार किया गया है। जिसमें किसानों को कई तरह के फायदे मिलते हैं। इसका नाम वर्टिकल फार्मिंग है जिसकी मदद से शहरी क्षेत्रों में भी खेती की जा सकती है। पारंपरिक खेती की तुलना में इसमें महज 8 सप्ताह में फसल तैयार हो जाएगी। इस तरह की खेती एक ऐसी जगह पर भी की जा सकती है, जहां कम मिट्टी हो। दिल्ली, मुंबई, कोलकाता या चेन्नई जैसे घनी आबादी वाले मेट्रो शहरों में भी इस तरह की खेती मुमकिन है। इसमें कीटनाशक की भी आवश्यकता नही होती है। वर्टिकल फार्मिंग एक तरह की ऐसी खेती है, जिसमें एक लेयर के ऊपर दूसरी लेयर लगाकर फल सब्जी का उत्पाद होता है। आज हम आपको इसी खेती के बारे में कई जरूरी बातें बताने जा रहें हैं। यूनाइटेड नेशन की एक अनुमान के मुताबिक, साल 2050 तक दुनिया की आबादी करीब 10 अरब तक पहुंच जाएगी। ऐसे में फूड प्रोडक्शन में भी 70 फीसदी का इजाफा करना होगा। साथ ही खेती के लिए नई तकनीक और इनोवेटिव तरीको की जरूरत होगी। वर्टिकल फार्मिंग यही पर मदद कर सकता है। बिजली पानी और मिट्टी जैसी समस्याओं से जूझने की जरूरत नहीं सबसे पहले अगर भारत में हम वर्टिकल फार्मिंग की संभावनाओं की बात करें तो लाखों किसानों के लिए यह एक बेहतर विकल्प साबित हो सकता है। लेकिन इसके लिए सबसे बड़ी चुनौती ये है कि आखिर कितने किसान इस नई तकनीक की मदद से खेती करना चाहते हैं। इस तरह की खेती से किसानों को कीटनाशक, उर्वरक, मिट्टी की खरब स्वास्थय और बेरोजगारी जैसी समस्याओं से निपटने में ममद मिल सकती है। भारत में किसानों को भरपूर बिजली, न्यूनतम समर्थन मूल्य पर पानी की कमी जैसी समस्याओं से भी जुझना पड़ता है। हालांकि, वर्टिकल फार्मिंग के लिए शुरूआत में इन्फ्रास्ट्रक्चर के लिए बड़े स्तर पर खर्च करना पड़ रहा है।

वर्टिकल फार्मिंग कितने तरीके से की जाती सकती है?

वर्टिकल फार्म्स अलग आकार के तौर पर विकसित किया जा सकता है। वर्टिकल फार्मिंग में तीन तरह से खेती की जा सकती है।

हाइड्रोपोनिक सिस्टम में पौधों को बिना मिट्टी के ही उगाया जाता है। इस तरह की खेती में पौधों की जड़ो को एक तरह के पोषक तत्व वाले सॉलुशन में डुबाया जाता है। इस सॉलुशन में पर्यापत मात्रा में माइक्रोन्यूट्रिएंट्स होते हैं, पौधों को सपोर्ट करने के लिए अन्य तरह के मैटेरियल का भी इस्तेमाल कया जाता है।
एक्वापोनिक सिस्टम में एक ही इकोसिस्टम में पौधे और मछलियों को तैयार किया जाता है। जबकि एयरोपोनिक सिस्टम में न तो मिट्टी और न ही किसी लिक्विड की जरूरत पड़ती है। एक एयर चैम्बर में जरूरी पोषक तत्वों को लिक्विड की मदद से मिला दिया जाता है। इसमें पानी की खपत लगभग न के बराबर होती है। बिना मौसम पर निर्भर हुए अच्छी उपजः- इस तरह की खेती के जरिए एक एकड में ही करीब चार से पांच एकड़ की जमीन जितना उत्पादन हो जाता है। किसानों को मौसम पर भी निर्भर नही रहना पड़ता है। वर्टिकल फार्मिग एक ऐसी बिल्डिंग में भी किया जा सकता है। जिसे छोड़ दिया गया है। पर्यावरण और किसानों की सेहत के लिहाज से भी इस खेती को बेहतरीन माना जाता है।

भारत में वर्टिकल फार्मिंग तकनीक को 2019 में ही लाया गया है। हालांकि भारत में अभी भी बड़े स्तर पर इस तरही की खेती नही की जा रही है। आबादी के हिसाब से इस तरह की खेती के लिए भारत एक मुफीद जगह साबित हो सकता है। यहां खुदार बाजार के अलावा, होटल, फूड चेन्स, रेलवे केटरिंग, विदेशी फूड सर्विस कंपनियों आदि में सब्जी और फल की अच्छी खपत होती है। अगर किसान के पास खुद की जमीन है तो उन्हें हर 5 साल के लिए प्रति एकड़ जमीन पर करीब 30.5 लाख रूपये खर्च करने होंगे।

सीमांत किसानों के लिए वर्टिकल फार्मिंग के प्रमुख लाभ :

- **कम जमीन पर उच्च उत्पादन** : यह तकनीक 100-500 वर्ग मीटर जैसे छोटे स्थानों पर भी की जा सकती है। ऊर्ध्वाधर रूप से व्यस्थित परतों के कारण, पारंपरिक खेती की तुलना में यह प्रति वर्ग फुट 10 गुना अधिक फसल पैदा कर सकती है।
- **पानी की बचत** : पारंपरिक खेती की तुलना में इसमें 90% तक कम पानी का उपयोग होता हे, जो जल-संकट वाले क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण है।
- **साल भर खेती (Off-Season Farming)** : नियंत्रित वातावरण (Temperature and Humidity control) कारण, इसमें बेमौसम सब्जियां और फल, जैसे लेटस, पालक, टमाटर और स्ट्रॉबेरी साल भर उगाए जा सकते है
  ऊर्ध्वाधर रूप से व्यस्थित परतों के कारण, पारंपरिक खेती की तुलना में यह प्रति वर्ग फुट 10 गुना अधिक फसल पैदा कर सकती है।

- **कीटनाशकों की आवश्यकता कम** : इनडोर खेती के कारण कीड़ों का खतरा कम होता है, जिससे रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कम या खत्म हो जाता है।
- **आर्थिक लाभ और सरकारी सहायता** : यह उच्च गुणवत्ता वाली फसलें प्रदान करती है जो शहरों के नजदीक जल्दी बिक जाती हैं। केंद्र सरकार की योजना (SMAM) के तहत, किसान कृषि मशीनरी पर 50 से 80% तक की सब्सिडी ले सकते हैं।

चुनौतियाँ:

- शुरुआती लागत अधिक (15 लाख रुपये से 50 लाख रुपये तक हो सकती है, जो पैमाने पर निर्भर करता है।
- तकनीकी ज्ञान और कुशल श्रम की आवश्यकता।
  हालाँकि, कम लागत वाली हाइड्रोपोनिक और एरोपोनिक्स तकनीक को अपनाकर, सीमांत किसान वर्टिकल फार्मिंग से अपनी आय को कई गुना बढ़ा सकते हैं।

- **अंतर्जात एंटीऑक्सीडेंट :** शरीर स्वाभाविक रूप से एंटीऑक्सीडेंट का उत्पादन करता है जिसमें ग्लूटाथियोन, अल्फा लिपोइक एसिड और सुपरऑक्साइड डिसम्यूटेज जैसे एंजाइम शामिल हैं।
- **प्रकार :** प्रमुख प्रकारों में विटामिन (सी, ई), खनिज (सेलेनियम) और फाईटोकेमिकल्स (फ्लेवोनोइड्स, पॉलीफेनॉल) शामिल हैं।

एंटीऑक्सीडेंट सप्लीमेट पर निर्भर रहने की तुलना में साबुत खाद्य पदार्थों से भरपूर आहार के माध्यम से एंटीऑसीडेंट का सेवन करना अधिक प्रभावी है।

- **विटामिन ई :** मेवों और बीजों में पाया जाता है, कोशिका झिल्लियों की रक्षा करता है।
- **विटामिन सी :** फलों और सब्जियों में पाया जाता है। डीएनए और कोशिका संरचनाओं की रक्षा करता है।
- **बीटा-कैरोटीन :** नारंगी/पलीली सब्जियों में पाया जाता है, विटामिन ए का अग्रदूत होता है।

मृदा में फास्फोरस की उपलब्धता तथा कृषि में महत्व

डा.ए.के. मिश्रा तथा डा. पुष्पा यादव
मुदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

फास्फोरस पौधों के लिए एक आवश्यक प्रमुख पोषक तत्व है। नत्रजन के पश्चात पौधों को सर्वाधिक फास्फोरस की आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि मिट्टी में फास्फोरस की कुल पर्याप्त मात्रा होती है, परन्तु इसकी बहुत कम मात्रा प्राय रूप में उपलब्ध होता है। मृदा में फास्फोरस अनेकों प्राथमिक एवं द्वितीयक खनिज पदार्थो के रूप में पाया जाता है। प्राथमिक खनिजों में एपटाइट ग्रुप लगभग 95% या अधिक मात्रा में फास्फोरस का मूल स्रोत है। मृदा में फास्फोरस Fe, Al तथा Ca फास्फेट्स के रूप में पाया जाता हे।

मृदा फास्फोरस कार्बनिक एवं अकार्बनिक दोनों रूपों में पाया जाता है। कार्बनिक फास्फोरस फाइटिन, न्यूक्लिक अम्ल तथा फास्फोलिपिड्स के रूप में पाया जाता है। जिसमें फाइटिन को पौधे सीधे शोषित कर लेते हैं जबकि न्यूक्लिक अम्ल पौधों जड़ की सतह पर विखण्डित होकर पौधों द्वारा स्वांगीकृत होता है फिर भी पौधे फास्फोरस की कमी को प्रदर्शित करते हैं। फाइटिन मृदा में आकार्बनिक फास्फोरस के रूप में कार्यशील होकर Fe, Al तथा Ca फाइटेट बनाता है। अम्लीय मृदा में फाइटिन (Phytin) Fe तथा Ae से क्रिया करके अविलेय फॉस्फेट में बदल जाता है जबकि मान्टमोरिलोनाइट क्ले द्वारा न्यूक्लिक अम्लों का अधिशोषण होता है। फास्फोलिपिड्स के रूप में फास्फोरस मृदा में न्यून मात्रा में पाया जाता है। मृदा में कुल कार्बनिक फास्फोरस का 38 से 58 प्रतिशत न्यूक्लिक अम्ल फास्फोरस का होता है। अकार्बनिक फास्फोरस के रूप में फास्फोरस का स्रोत मोनो फास्फेट, डाईफास्फेट तथा ट्राईफास्फेट है जिसमें पौधे द्वारा फास्फोरस मोनो फास्फेट तथा डाईफास्फेट के रूप में ग्रहण किया जाता है। जबकि ट्राईफास्फेट कैल्शियम से मिलकर मृदा में स्थिर हो जाता है।

मृदा में फास्फोरस की मात्रा पैतृक पदार्थ, जलवायु, अपक्षय की प्रकृति एवं वनस्पति के प्रकार आदि कारकों पर निर्भर करती है। क्ले (चिकनी) एवं सिल्ट मिट्टी में, बलुई मृदा की अपेक्षा अधिक फास्फोरस होता है। जलोढ़ मृदा में फास्फोरस की मात्रा सर्वाधिक होती है। क्योंकि जिन पैतृक पदार्थो से जलोढ़ मृदा का निर्माण होता है उनमें फास्फोरस की मात्रा अत्याधिक होती है। लैटेराइट मृदा में फास्फोरस सबसे कम पाया जाता है। कपास की काली मिट्टी में इसकी मात्रा मध्यम होती है। मरूस्थल भूमि में P की मात्रा अधिक होती है अपेक्षाकृत जलोढ़ मृदा से कम। सामान्तया मृदा में फास्फोरस की कुल मात्रा 0.02 से 0.5 प्रतिशत तक होती है। जबकि एक औसत कृषि योग्य मृदा में लगभग 0.1 प्रतिशत कुल फास्फोरस होता है। मृदा निर्माण में चट्टानों के अपक्षय से फास्फोरस मुक्त होता है। फास्फोरस युक्त प्रमुख खनिज एपेटाइट एवं रॉक फास्फोरस प्राथमिक स्रोत है। अपक्षय के दौरान फास्फोरस विलेय होकर मिट्टी के घोल मे जाता है या Fe, Al एवं Ca के साथ स्थिर हो जाता है। द्वितीयक स्रोत के रूप में मिट्टी में फास्फोरस पौधों एवं जीवों के अवशेष, कार्बनिक पदार्थो के अपघटन एवं सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता से प्राप्य फास्फोरस के रूप में उपलब्ध होता है। अम्लीय मृदा में फास्फोरस प्राप्य रूप H_2PO_4 को तथा क्षारीय मृदा में फास्फोरस की उपलब्धता $HPO4^{2-}$ के रूप में, जिसे पौधे आसानी से ग्रहण कर लेते है।

मृदा में फास्फोरस की उपलब्धता पी.एच.मान 6.5 से 7.5 पर सर्वाधिक होती है। सूक्ष्म जीवों में फॉस्फेट सॉलुविलाइजिंग बैक्टीरिया (PSB) तथा माइकोराइजा फंगस की उपस्थिति में मृदा में फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ जातीहै। समान्य तौर पर मृदा में जैविक खादों के प्रयोग जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, अम्लीय मृदा में चूने का प्रयोग, क्षारीय मृदा में जिप्सम का प्रयोग तथा मृदा में Site-Specific Nutrient Management (SSSNM) द्वारा मृदा में फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ायी जा सकती है। मृदा में फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाने हेतु संतुलित फास्फेटिक उर्वरकों का प्रयोग करना नितान्त आवश्यक है। जैसे अम्लीय मृदा में रॉक फास्फेट का प्रयोग करना एवं अन्य मृदाओं मे SSP, DAP तथा अन्य फास्फोटिक उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

कृषि में फॉस्फोरस का महत्व :

पौधों में फास्फोरस का विशेष महत्व जड़ों का विकास तथा ऊर्जा स्थानान्तरण के रूप में ATP एवं ADP का निर्माण करना होता है। फास्फोरस के प्रयोग से फसलों में फूल, फल तथा बीज का निर्माण शीघ्रता से होता है तथा शीघ्र परिपक्वता के साथ फसलों की उपज में वृद्धि होती है। फास्फोरस दलहनी फसलों में राइजोबियम बैक्टीरिया की क्रियाशीलता को बढ़ाता है। जिससे दलहनी फसलों में नत्रजन का स्थिरीकरण बढ़ जाता है। फास्फोरस फसलों में दानों की संख्या तथा चमक को भी बढ़ाता है।

निष्कर्ष :

फास्फोरस मृदा में प्राप्य या अप्राप्य रूप में किसी न किसी रूप में उपस्थिति रहती है। मृदा का निर्माण प्राथमिक एंव द्वितीयक फास्फेटिक खनिजों के भाग लेने से भी होता है। फास्फोरस पौधों की वृद्धि, विकास एवं उत्पादन के लिए अत्यन्त आवश्यक पोषक तत्व है। मृदा में P की उपलब्धता भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों पर निर्भर करती हैं। वैज्ञानिक एवं संतुलित पोषक तत्व प्रबन्धन द्वारा फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाकर फस्ल की उत्पादकता एवं मृदा उर्वरता को संरक्षित किया जा सकता है।

महाविद्यालय एवं मेधा लर्निंग फाउण्डेशन के सहयोग से छात्र एवं छात्राओं का निःशुल्क पर्सनालिटी डेवल्पमेंट प्रशिक्षण कार्यक्रम

साँवा की उन्नतशील खेती

डा.पी.के.सिंह, डा. दीपक पाण्डेय, डा.एस.एस. चन्दा एवं डा. सुधाकर सिंह
(शस्य विज्ञान विभाग)
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

साँवा की उन्नतशील खेती :

असिंचित क्षेत्रों मे ंबोयी जाने वाली मोटे अनाजों में साँवा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह भारत की एक प्राचीन फसल है। यह सामान्यता असिंचित क्षेत्र में बोयी जाने वाली सूखा प्रतिरोधी फस्ल है। इसमें पानी की आवश्यकता अन्य फसलों से कम हैं। हल्की नम व ऊष्ण जलवायु इसके लिए सर्वोत्तम है।

सामान्यतया साँवा का उपयोग चावल की तरह किया जाता हैं उत्तर भारत में साँवा की ''खीर'' बड़े चाव से खायी जाती है। पशुओं के लिए इसका बहुत उपयोग है। इसका हरा चारा पशुओं को पसन्द है। इसमें चावल की तुलना में अधिक पोषक तत्व पाये जाते हैं। और इसमें पायी जाने वाली प्रोटीन की पाचन योग्यता सबसे अधिक (40 प्रतिशत तक) है।

पोषक तत्व की मात्रा (प्रत्येक 100 ग्राम में)

फसल	प्रोटीन (ग्राम)	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	वसा (ग्राम)	क्रूड फाइबर (ग्राम)	लौह तत्व (मि0ग्रा0)	कैल्शियम (मि0ग्रा0)	फास्फोरस (मि0ग्रा0)
चावल	6.8	78.2	0.5	0.2	0.6	10.00	60.0
साँवा	11.6	74.3	5.8	14.7	4.7	14.0	121.0

मिट्टी :

सामान्यतया यह फसल कम उजपाऊ वाली मिट्टी में बोयी जाती है। इसे आंशिक रूप से जलाकांत मिट्टी जैसे नदी के किनारे की निचली भूमि में भी उगाया जा सकता है। परन्तु इसके लिए बलुई दोमट व दोमट मिट्टी जिसमें पर्याप्त मात्रा में पोषत तत्व हो, सर्वाधिक उपयुक्त है।

खेत की तैयारी :

मानसून के प्रारम्भ होने से पूर्व खेती की जुताई आवश्यक है। जिससे खेत में नमी की मात्रा संरक्षित हो सके। मानसून के प्रारम्भ होने के साथ ही मिट्टी पलटने वाले हल से पहली जुताई तथा दो–तीन जुताईयां हल से करके खेत को भली–भांति तैरूार कर लेना अधिक पदैावार के लिए उपयुक्त होता है।

भूमि शोधन :

फसल को भूमि जनित रोगों से बचाने के लिए ट्राइकोडर्मा हारजियेनम 2% डब्लू पी. की 2.5 किग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर 60–75 किग्रा गोबर की खाद में मिलाकर हल्के पानी का छीटा देकर 8–10 दिन तक छाया में रखने के उपरान्त आखिरी जुताई के समय खेतों में मिला दें। दीमक, सफेद गिडार, सूत्रकृमि, जड़ की सूण्डी, कटवर्म आदि कीटों से बचाव हेतु ब्यूवेरिया बैसियाना 1% डब्लू.पी. बायोपेस्टीसाइड्स की 2.5 किग्रा मात्रा प्रति हेक्टेयर 60–75 किग्रा गोबर की सड़ी हुई खाद में मिलाकर हल्के पानी का छीटा देकर 8–10 दिन तक छाया में रखने के उपरान्त बुआई के पूर्व आखिरी जुताई पर भूमि में मिला देना चाहिए।

बुवाई का समय :

साँवा की बुवाई का उत्तम समय 15 जनू से 15 जुलाई तक है। मानसून के प्रारम्भ होने के साथ ही इसकी बुवाई कर देनी चाहिए। इसकी बुवाई छिटकावाँ विधि से या कूड़ों में 3-4 सेमी. की गहराई में की जाती है। कुछ क्षेत्रों में इसकी रोपाई करते है। परन्तु पांक्ति से पंक्ति दूरी 25सेमी. रखते है। लाइन में बुवाई लाभप्रद होती है। पानी के लगाव वाले स्थान पर मानसून के प्रारम्भ होते ही छिटकवाँ विधि से बुवाई कर देना चाहिए तथा बाढ़ आने के सम्भावना से पूर्व फसल काट लेना श्रेयस्कर होता है।

बीजदर :

प्रति हेक्टेयर 8-10 किग्रा. गुणवत्ता युक्त बीज पर्याप्त होता है।

प्रजातियाँ :

प्रजातियाँ	पकने की अवधि (दिवस में)	पौधे की ल0 (सेमी0)	बालीकी ल0 (सेमी0)	पौधों का रंग	उपज (कु./हे.)
टी-46	-	-	-	-	10 - 12
आई.पी.-149	80 - 90	145	24-26	हल्का भूरा रंग	12 - 13
यू.पी.टी.-8	74 - 80	126 - 130	-	हल्का भूरा रंग	12
आई.पी.एम. -97	83 - 88	140 - 150	12 - 14	हल्का भूरा रंग	10
आई.पी.एम. -100	65 - 67	130 - 140	-	हल्का भूरा रंग	10 - 12
आई.पी.एम. -148	77 - 86	150 - 162	-	हल्का भूरा रंग	11 - 12
आई.पी.एम. -151	80 - 88	135-162	14 - 17	हल्का भूरा रंग	12 - 13
के - 1	100 - 115	-	-	-	10 - 12
टाइप 25	100 - 110	-	-	-	10 - 12
आई.पी. एम - 149	80 - 85	-	-	-	12 - 15
वीएल - 1	-	-	-	-	12 - 15
यू.पी.टी.-8	75 - 80	-	-	-	12 - 15

खाद एवं उर्वरक का प्रयोग :

जेविक खाद का उपयोग हमेशा लाभकारी होता है, क्योंकि मिट्टी में आवश्यक पोषक तत्वों को प्रदान करने के साथ-साथ जल धारण क्षमता को भी बढ़ाता है। 5-10 टन प्रति हेक्टेयर की दर से कम्पोस्ट खाद खेत में मानसून के बाद पहली जुताई के समये मिलाना लाभकारी होता है। नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश की मात्रा 40:20:20 किग्रा. प्रति हेक्टेयर के अनुपात में प्रयोग करने से उत्पादन परिणाम बेहतर प्राप्त होता है। सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने की स्थिति में नत्रजन की आधी मात्रा टापड्रेसिंग के रूप में बुवाई के 25-30 दिन बाद फसल में छिड़काव करना चाहिए।

पानी का प्रबन्धन :

सामान्यतः साँवा की खेती में सिंवचाई की आवश्यकता नही पड़ती है। परन्तु जब वर्षा लम्बे समय तक रूक गयी हो, तो पुष्प आने की स्थिति में एक सिंचाई आवश्यक हो जाती है। जल भराव की स्थिति में पानी के निकासी की व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए।

खरतपवार नियंत्रण :

बुवाई के 30-35 दिन तक खेत खरपतवार रहित होना चाहिए। निराई-गुड़ाई द्वारा खरपतवार नियंत्रण के साथ ही पौधों की जड़ो में आक्सीजन का संचार होता है। सामान्यतया दो निराई-गुड़ाई 15-15 दिवस के अन्तराल पर पर्याप्त है। पंक्तियों में बोये गये पौधों की निराई गुड़ाई हैण्ड हो अथवा व्हील हो से किया जा सकता है।

फसल पद्धतियाँ :

1. **अन्तः/मिश्रित फसल पद्धति**

   साँवा की फसल को विभिन्न प्रकार की फसलों के साथ अन्तः/मिश्रित फसल पद्धति के रूप में उगाया जाता है। साँवा आधारित प्रमुख मिश्रित फसल पद्धतियाँ निम्न है।

   साँवा + कपास, साँवा + अरहर

   साँवा + उर्द/मूँग, साँवा + लोबिया

2. **फसल चक्र**

   साँवा की शुद्ध फसल को विभिन्न फसलों के साथ फसल चक्र के रूप में उगाया जाता है। साँवा आधारित कुछ प्रमुख फसल चक्र निम्न हैं।

   साँवा – चना, साँवा – मटर

   साँवा – अलसी, साँवा – जौ / गेहूँ

   साँवा – सरसों।

मधुमक्खी पालन एक उत्तम स्वरोजगार

धनेन्द्र कुमार सिंह, सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान विभाग
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

मधुमक्खी पालन एक कृषि आधारित उद्योग है, जिसकी जानकारी अत्यंत सरल है। इसमें कम लागत है, आमदनी अधिक एवं कम समय में अधिक लाभ प्राप्त होने लगता है। गाँवों में आर्थिक विकास के लिए मधुमक्खी पालन से बेहतर कोई दूसरा घरेलू रोजगार नही है। जानकारी सरल होने के कारण कम पढ़ा–लिखा व्यक्ति भी इस व्यवसाय को कुशलता पूर्वक कर सकता है। गरीब, भूमिहीन भी इस व्यवसाय को 5 से 10 मधुमक्खी के बक्से से कम पूँजी से शुरू कर 3 वर्षो के अन्दर 50–100 बक्सों का मालिक बन सकता है एवं प्रतिवर्ष मधुमक्खी, मोम एवं मधु बेचकर लाखों रूपये की आमदनी प्राप्त कर सकता है। इस कार्य को करने में अधिक शारीरिक परिश्रम न होने से ग्रामीण महिलांए एवं बच्चे भी अपने घरलू कार्य के साथ आसानी से कर सकते है। अधिक पूँजी न लगने के कारण बेरोजगार नवयुवक भी इसे अपना रोजगार का साधन बना सकते है। यह स्वरोजगार एवं अतिरिक्त आय का उत्तम घरेलू उद्योग है।

मधुमक्खी कीट – मधुमक्खी सामाजिक कीट का एक सर्वोत्तम उदाहरण है जो शहद एकत्र करके अपने परिवार का भरण – पोषण करती है। यह कीट हाइमेनोप्टेरा गण के एपिस वंश के अन्तर्गत आता है। मधुमक्खियों की तीन जातियां भारतीय मधुमक्खी (एपिस इण्डिका), चट्टानी मधुमक्खी (एपिस डोर्सोटा) व छोटी मधुमक्खी (एपिस फ्लोरिया) भारतवर्ष में पायी जाती है। एक विदेशी मधुमक्खी (एपिस मेलिफेरा) जिसे इटालियन या यूरोपियन मधुमक्खी कहते हैं, अब भारत में स्थापित हो गयी हैं एवं इसका प्रयोग व्यवसायिक दृष्टि से मधुमक्खी पालन के लिये किया जा रहा है।

मधुमक्खी के प्रकार –

मधुमक्खियों की उक्त चारों प्रजातियों के बारें में संक्षिप्त जानकारी निम्नलिखित प्रकार से है–

(1) भारतीय मधुमक्खी (एपिस सिराना इण्डिका) – यह मधुमक्खी सम्पूर्ण भारतवर्ष मे ंपायी जाती ह। यह पीलापन लिए हुए भूरे रंग की होती है। अंधेरे स्थानो जैसे पुरानी इमरतों, जंगलों, पेड़ों के खोखलों, दीवारों, गुफाओं आदि में यह 6–8 समांतर छत्ते बनाती है। ये मधुमक्खी स्वभाव से नम्र व शान्त होती है। और इसे सरलता से पाला जा सकता है। यह एक उद्यमशील मधुमक्खी है एवं अच्छी मात्रा में शहद एकत्रित करती है। इसकी एक कालोनी से औसतन 2–3 किलोग्राम शहद प्रतिवर्ष प्राप्त होता है।

(2) चट्टानी मधुमक्खी (एपिस डोर्सोटा) – इस मधुमक्खी के भंवर अथव भौवरा के नाम से भी जाना जाता है यह सम्पर्ण भारतवर्ष में पायी जाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में यह समुद्र तल से 1000 मीटर की ऊंचाई तक मिलती है। इसकी कालोनियाँ कम तापक्रम पर एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर चली जाती है। ये मधुमक्खियाँ एक ही छत्ता बनाती हैं जो लगभग 1.5 से 2.1 मीटर लंबा व 0.6 से 1.2 मीटर चौड़ा होता है। इसका छत्ता प्रायः चट्टानों पर लटकता रहता है। ये मधुमक्खयाँ अत्यन्त उग्र प्रवृत्ति की होती हैं और छेड़छाड़ करने पर मानव का दूर तक पीछा कर आक्रमण करती हैं ये बड़ी मात्रा मे ंशहद एकत्रित करती हैं। ये अपना कार्य प्रातः जल्दी आरम्भ कर देती हैं इनके एक छत्ते से 40 किलोग्राम तक शहद प्रतिवर्ष प्राप्त होता है।

(3) छोटी मधुमक्खी (एपिस फ्लोरिया) – यह मधुमक्खी सम्पूर्ण देश में पायी जाती है। मगर समुद्र तल से 335 मीटर की ऊंचाई पर बहुत कम पायी जाती है। यह जल्दी-जल्दी स्थान बदलती है एवं एक स्थान पर इसकी कॉलोनी 5 माह से अधिक नहीं रहती है। ये मधुमक्खी एक छत्ता बनाती है जिसका आकार हथेली के बराबर होता है। यह शाखाओं, बाड़ों, पेड़ों, गुफाओं, घेरा की चिमनियों, खाली बक्सों, लकड़ियों के देरों आदि पर अपना छत्ता बनाती है। इसकी रानी सुनहरी भूरी व नर काले होते है। श्रमिक, रानी एवं नरों की अपेक्षा छोटे होते हैं। जो चमकीले नारंगी रंग का आभास देती हैं। ये मधमुक्खियाँ शहद एकत्रित करने में कमजोर होती हैं और इसके छत्ते से प्रतिवर्ष लगभग 1 किलोग्राम शहद प्राप्त होता है।

4) यूरोपियन या इटालियन मधुमक्खी (एपिस मेलीफेरा) – यह मधुमक्खी यूरोप, इटली की निवासी है जो भारत मे पूर्ण रूप से स्थापित हो गयी है। इसका स्वभाव नम्र होता है। यह बंद स्थानों पर सामांतर छत्ते बनाती है। इसकी रानी भारी मात्रा में अण्डे देती है। यह एक अच्छी शहद एकत्रित करने वाली मधुमकखी है। इसकी एक कालोनी का औसतन शहद उत्पादन 40 से 50 किलोग्राम प्रतिवर्ष है।

मधुमक्खी परिवार के सदस्य –

1) रानी मधुमक्खी (Queen) – प्रत्येक कॉलोनी में सदैव एक रानी होती है। रानी पूर्ण रूप से विकसित मादा मधुमक्खी होती है एवं पूरी मधुमक्खी कॉलोनी की मां होती है। रानी छत्ते के दूसरे सदस्यों से बड़ी, सुन्दर, चमकदार तथा अपने लंबे पेट के कारण आसानी से पहचानी जाती है। यह अपना भोजन स्वयं नही कर सकती है। श्रमिक मधुमक्खियां ही इसे भोजन कराती है। इसका भोजन भी विशेष प्रकार का होता है जिसे रॉयल जैली कहते है। जो युवा श्रमिक मधमुक्खियों की लार ग्रंथियों द्वारा पैदा किया जाता है। रानी का कार्य केवल अण्डे देना है। सक्रिय अवधि में यह 800-2000 अण्डे प्रतिदिन तक देती है। यह अपनी इच्छा तथा आवश्यकतानुसार निषेचित व अनिषेचित अण्डे दे सकती है। निषेचित अण्ड से निकली इल्लियां को जब ''रॉयल जैली'' खिलाई जाती हैं तो रानी मधुमक्खी पैदा होती है।

2) श्रमिक (Worker) – यह मादा मधुमक्खियाँ ही होती हैं मगर इनके प्रजनन अंग पूर्ण विकसित नहीं होते हैं। ये श्रमिक कोष्ठ से पैदा होती है। इस मधुमक्खी में मातृत्व की भावना बहुत अधिक होती है। सभी ज्ञानेन्द्रियाँ पूर्ण विकसित होती है। इसके पेट अथवा उदर के अंतिम सिरे पर एक आरी के सामान डंक होता है। जिसे ये अपने व अपनी कॉलोनी के बचाव के लिये ही प्रयोग में लाती है। इनकी आयु 6 से 7 सप्ताह एवं सर्दियों में 6 माह तक होती है ।ये अपने जीवन का पहला आधा भाग कॉलानी में रहकर विभिन्न कार्य जैसे-अण्डे, लार्वा का पालन-पोषण, रानी व नरों को भोजन कराने, मोम पैदा कर नये छत्ते बनाने, पुराने छत्तों की मरम्मत करने, बड़ी मक्खियों द्वारा लाये गये मकरंद को विभिन्न कोष्ठों में रखने मकरंद से शहद तैयार करने तथा शत्रुओं से कॉलोनी की रक्षा करने आदि में व्यतीत करती है। ये सर्दी या गर्मी में अपनी कॉलोनी का तापमान 32-36^0 के मध्य रखती है।

3) नर (Drone) **–** ये मधुमक्खी कॉलोनी के नर सदस्य होते हैं। ये शरीर में श्रमिक व रानी मधुमक्खियों से अधिक मोटे, मजबूत व बड़े होते हैं परन्तु लम्बाई में छोटे होते है। उदर व पेट का पिछला सिरा कुछ गोलाई लिए होता है। इनमें डंक, पराग व मकरंद एकत्रित करने के अंग व मोम ग्रन्थियाँ आदि नहीं होती है इनकों श्रमिक मधुमक्खियाँ भोजन व पोषण इत्यादि कराती है। इनका प्रमुख कार्य रानी के साथ संभोग करना है। नर केवल एक बार संभोग करते हैं व इसके उपरान्त मर जाते हैं। इनकी आयु 57 दिन की होती है। अण्डे से पूर्ण विकसित नर बनने में 24 दिनों का समय लगता है। वर्षा व सर्दी में इनकी संख्या नगण्य रहती है।

मधुमक्खी का आर्थिक महत्व (Economic Importance of Honeybee) – मधुमक्खियां मानव समाज के लिये बहुत उपयोगी कीट है। मधुमक्खी पालन को अधिक लाभकारी बनाने हेतु मधुमक्खी पालन में विविधिकरण करने की आवश्यकता है। इस प्रकर मधुमक्खी से मधु एवं मोम के अलावा अन्य पदार्थ जैसे राजअवलेह, मधुमक्खी विष, पराग एवं मधुमक्खी गोद का उत्पादन करने से अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। अतः इनके उत्पादन पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

बहुमूल्य पदार्थ निम्नलिखित हैः–

शहद – शहद मीठा द्रव्य है जिसे मधुमक्खियाँ फूलों से लाए मकरंद से बनाती हैं। मधुमक्खियां फूलों की मकरंद ग्रन्थियों से मकरंद एकत्रित करती है और उसे गाढ़े द्रव्य के रूप में संसाधित करती है यह द्रव्य या तरल छत्तों के कोष्ठों में संचित रहता हे जहां इसे भविष्य के उपयोग के लिए संसाधित किया जाता है। मधुमक्खियों को शहद का संग्रहण संसाधित करने और छत्तों को बन्द करने में 2–3 सप्ताह का समय लगता है। शहद पर मौसम तथा मकरंद देने वाले फूलों की किस्मों का गहरा प्रभाव पड़ता है। शहद में भारी मात्रा में शर्कराएँ, खनिज, विटामिन, एंजाइम एवं पराग होता है। शर्कराओं में लेबुलोस (फ्रक्टोस) व डेक्ट्रोस (ग्लूकोस) प्रमुख है।

मोम – श्रमिक मधुमक्ख्यिाँ शहद खाने के बाद अपनी मोम ग्रंथियों से मोम का उत्पादन करती है जो ''मधुमक्खी–मोम'' कहलाता है। इसका उपयोग पॉलिश, प्रसाधन, पेंटिंग आदि बनाने में किया जाता है। भारत में मधुमक्खी मोम का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत चट्टानी मधुमक्खी एपिस डोर्सटा है।

पराग – मधुमक्खियाँ पराग फूलों से इकठ्ठा करती है। यह प्रौढ़ एवं शिशु मधुमक्खी के भोजन का मुख्य अंश है जो शरीर के विकास में मदद करता है। इसमें प्रोटीन, वसा एवं सूक्ष्म पौष्टिक तत्व पाये जाते हैं पराग मधुमक्खी के मोम बनने में भी काफी मदद करता है। पराग एवं मधु मिला भोजन खाने से श्रमिक एवं नर मधुमक्खी की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। पराग के अभाव में रानी मधुमक्खी अण्डा देना बन्द कर देती है।

मौन विष– कमेरी मौन अपने या वंश को शत्रुओं से या अन्य खतरे से बचाव के लिए डंक का प्रयोग करतीहै। इस डंक के द्वारा मौन, मौनविष छोड़ती है। मौनविष से शरीर में जलन और सूजन हो जाती है। परन्तु मौनपालक को यह प्रभाव धीरे–धीरे कम हो जाते है। मौन डंक से क्षारीय और अम्लीय स्त्राव करने वाली दो ग्रन्थियाँ जुड़ी होती है। मौनविष इन ग्रंथियों से आता है। मौनविष एक विशिष्ट उपकरण द्वारा एकत्र किया जाता है। जिसे मौनविष एकत्रक यंत्र कहा जाता है।

रॉयल जेली (राज अवलेह) – एक अत्यंत पौष्टिक एवं औषधि युक्त मौन उत्पादन है। यह श्रमिक मक्खी के सिर से निकलता है। इसका स्त्राव 6 दिन पुरानी मक्खी से शुरू होता है। तथा 13 दिन की उम्र तक अधिक होता है। देखने में राज अवलेह दूध सा सफेद या हलके पीले रंग का होता है। विटामिन से भरपूर राज अवलेह के प्रोटीन भाग में अधिकाशं एमिनो एसिड पाये जाते है। मानव शरीर के 10 एमिनो एसिड जो अत्याधिक महत्व के है वे राज अवलेह में पाये जाते है। यह पौष्टिक तत्व मौनवंश के सभी सदस्यों को तीन दिनों तक श्रमिक मक्खी खिलाती है लेकिन रानी मक्खी के पूर्ण शिशुकाल एवं प्रौढ़ अवस्था में खिलाया जाता है जिसके कारण इसकी आयु अवधि लम्बी होती है तथा अधिक अण्डा देने की क्षमता होती है।

जैविक उत्पादन में समेकित पोषण प्रबंधन

दीपक पाण्डेय, सुधाकर सिंह, स्वाहा शी चन्दा एवं पंकज कुमार सिंह
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

जैविक खेती भारतीय संस्कृति की पारम्परिक पद्धति है। इसे आधुनिक विज्ञान के समन्वय से पुर्नप्रतिपादित किया गया है। वस्तुतः खेती की यह पद्धति फसलचक्र, फसल अवशेष, हरी खाद, गोबर की खाद, जैविक कीटनाशकों तथा खनिजधारी चट्टानों के प्रयोग पर निर्भर करती है इससे भूमि की उत्पादकता तथा उर्वरता लम्बे समय तक बनी रहती है। इस खाद्य उत्पाद भी रासायनिक यौगिकों से रहित रह कर अधिक गुणकारी होते है।

जैविक पद्धति के प्रमुख सिद्धान्त है – खेती के लिए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग भूमि का आवश्यक एवं जीवंत उपयोग प्राकृतिक समझ बूझ पर आधारित कृषि क्रियांए, जेविक प्रणाली पर आधारित फसल सुरक्षा एवं पोषक, भूमि में टिकाऊ उर्वरता उचित पोषक खाद्य उत्पादन तथा पर्यावरणीय मित्रवत प्रौद्योगिकियों द्वारा अधिकतम खाद्य उत्पादन करना। इस प्रकार जैविक खेती खाद्य सुरक्षा से पोषक सुरक्षा की तरफ प्रेरित करती है।

जैविक खेती में फसल उत्पादन हेतु पोषक तत्वों का उचित प्रबंधन एक प्रमुख कदम हैं। विभिन्न फसलों में पोषक तत्वों की अलग-अगल मात्राओं की आवश्यकता हाने के फलस्वरूप विभिन्न स्त्रोतों की अलग-अलग मात्राओं की जरूरत होती है। जैविक खेती के अंतर्गत किसी प्रकार के रासायनिक उर्वरकों, पादप वृद्धि हामोन्स इत्यादि का उपयोग नही किया जा सकता है, अतः यह जानना आवश्यक है की पोषक प्रबंधन के लिए इस पद्धति में क्या विकल्प उपलब्ध है तथा इन्हें कैसे अपनाया जा सकता है।

जैविक खेती हेतु पोषक तत्वों के विभिन्न स्त्रोत एवं प्रक्रियाएँ –

जैविक स्त्रोतों मे मुख्य पोषक तत्व यथा नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटेशियम की मात्रा रासायनिक उर्वरकों की तुलना में कम होने के कारण पोषण प्रबन्धन एक चुनौती है। आगामी मौसम में बुवाई होने वाले फसल की पोषक तत्वों की आवश्यकता को देखते हुए आपूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार की जैव उर्वरकों के उपयोग के साथ-साथ सस्य क्रियाओं की रणनीति शुरू से ही बना लेने से उचित प्रबंधन सुनिश्चित किया जा सकता है। इन प्रक्रियाओं में दलहनी पौधों से फसलचक्र अपना प्रमुख है।

दलहनी पौधे वातावरण से नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक हाते हैं। प्रतिवर्ष 10 से 150 किग्रा तक नाइट्रोजन प्रति हैक्टर स्थिरीकरण कर सकते है फसलों के चयन में विविधता तथा फसलचक्रण पौधों के जड़ की संरचना में भिन्नता के कारण मृदा की एक ही सतह से पोषक तत्वों के निकास को भी नियंत्रित करता हैं। फसल उत्पादन में नाइट्रोजन के एक क्रांतिक पोषक तत्व होने के कारण फसल के सकल नाइट्रोजन की आवश्यकता हो ध्यान में रखकर विभिन्न स्त्रोतो से इसकी पूर्ति के लिए आवश्यक मात्रा खेत में डालने की जरूरत होती हैं।

जैविक खेती के अंतर्गत दर्शायें गए स्रोतों में से उपलब्ध संसाधनों की उचित मात्रा का पोषक प्रबंधन मे समावेश किया जा सकता है। रॉक फास्फेट फॉस्फोरस का एक महत्वपूर्ण खनिज है इसका जैविक खेती में फॉस्फेट उर्वरक के रूप में किया जा सकता हैं मृदा में मिलकर जीवाणुओं की मदद से रॉक फास्फेट धीरे-धीरे घुलकर फसलों को लम्बे समय तक

फॉस्फोरस उपलब्ध करवाते है। खेत तैयार करते समय अंतिम जुताई के साथ 100 किग्रा0/हे0 रॉक फास्फेट की दर से डालकर खेत में मिला देना चाहिए। ये खनिजधारी चट्टानें मुख्य पोषक तत्वों के साथ-साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों का भी स्रोत होते है। रॉक फास्फेट के अलावा पोटेशियम के स्रोत के रूप में K. फेल्डस्पार्स माइका एवं इल्लाइट का उपयोग तथा सल्फर एवं आयरन के लिए पाइराइट का उपयोग भी किया जा सकता है। पाइराइट को रॉक फास्फेट के साथ मृदा में डालने से मृदा जीवाणुओं द्वारा पाईराइट के ऑक्सीकरण के फलस्वरूप बनने वाले अम्ल से रॉक फास्फेट घुलकर पौधे को आसानी से उपलब्ध हो जाते है। लम्बे समय तक इनके निरंतर उपयोग से मृदा में इनकी मात्रा जमा होती जाती है। अतः मृदा परीक्षण करवाकर यह निर्धारित कर लें कि इनके उपयोग की आगे कितनी जरूरत हैं।

हरी खाद –

हरी खाद वाली फसलों में पोषक तत्वों और कार्बनिक पदार्थो का अच्छा स्रोत हैं हरी खाद में समान्यतः दलहनी पौधों की खेत में बुआई कर पर्याप्त वृद्धि के बाद मृदा में मिला दिए जाते है। ग्रीष्मकाल में मानसून पूर्व हरी खाद वाली फसले जैसे – ढैंचा, सनई, मूंग, लोबिया इत्यादि की बुआई कर 30-40 दिनों बाद खेत में मिला देना चाहिए। इससे कार्बन एवं नाइट्रोजन की उपलब्धता आगामी फसल में की जा सके कुछ हरी खाद वाली फसलों का शुष्क भार एवं उनमें उपस्थित पोषक तत्वों की अनुमानित मात्रा सारणी में दर्शायी गयी है।

हरी खाद वाली फसलें एवं उनमे पाई जाने वाली मुख्य पादप तत्वों की मात्रा : –

फसले	शुष्क भर (टन/हे0)	नाइट्रोजन (%)	फास्फोरस (%)	पोटाश (%)
ढैंचा	5-6	21-3.5	0.15-0.6	1.2-2
सनई	2.27	21-2.4	0.5	1.8
लोबिया	2.29	1.9-2.2	0.7	1.2-1.5
मूंग	1.5-2	1.4-1.6	0.5	1.2

जैव उर्वरक –

जैव उर्वरक जीवित सूक्ष्मजीव या उनकी सुषुप्तावस्था की संरचना वाली उत्पाद है। इसके उपयोग के उपरान्त वे जड़ के पास बहुगणित होकर पौधे के विकाश को लाभकारी के रूप से प्रभावित करती है। जैविक खेती में जैव उर्वरकों का उपयोग पोषण प्रबंधक का एक अभिन्न भाग है। विभिन्न प्रकार के जैव उर्वरक पौधों को अलग-अलग पोषक तत्वों को उपलब्ध करवाते है। मुख्य प्रकार के जैव उर्वरक जिनका जैविक खेती में पोषक तत्व प्रबंधन में उपयोग होता है।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण –

इस प्रकार के जैव उर्वरक वातावरण में उपस्थित नाइट्रोजन गैस को रूपांतरित कर पौधों को उपलब्ध करवाने में सहायक होते है। इसमें कुछ ऐसे जीवाणु है। जो एक विशिष्ट पौधों के साथ रह कर ही नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं। जिन्हे सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहते हैं। उदाहरण के लिए राइजोबियम जो सिर्फ दलहनी पौधों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते है। अतः दलहनी पौधों के लिए राइजोबियम जैव उर्वरक से बीज शोधन की आवश्यकता होती है। विभिन्न दलहनी पौधे के लिए भी राइजोवियम की अलग-अलग प्रजाति होती है इसलिए हमेशा राइजोबियम जैव उर्वरक लेते समय यह देख लेना है कि यह दलहनी पौधों के लिए उपयुक्त है या नहीं। दूसरे प्रकार के नाइट्रोजन फिक्सर मुक्त जीवी होते है। और किसी विशिष्ट मेजबान के साथ नही बल्की किसी भी पौधे में उपयोग करने पर नाइट्रोजन उपलब्ध करवाते हैं, जैसे एजोटोबैक्टर इस प्रकार के जैव उर्वरक का उपयोग किसी भी प्रकार के फसलों में किया जा सकता है।

कुछ नाइट्रोजन स्थिरीकरण विशेष फसलों के साथ अपना बेहतर प्रभाव दिखाते है इसलिए उनका प्रयोग उन्ही फसलों पर करना चाहिए। उदाहरण स्वरूप एजोस्पीरिलयम का उपयोग मक्का, ज्वार बाजार इत्यादि, एजोटोबैक्टर का उपयोग गन्ने में नील हरित शैवाल तथा अजोला का उपयोग धान के फसल में अधिक प्रभावी होती है। नाइट्रोजन फिक्सर जैव उर्वरक फसलों में 15-40 Kg N/ha तक उपलब्ध करवा सकते है।

फॉस्फोरस विलेयक जैव उर्वरक –

फास्फोरस विलेयक जीवाणु मृदा में उपस्थित ऑर्गेनिक एवं इन ऑर्गेनिक फास्फोरस को घुलाकर फसलों को उपलब्ध करवाते हैं। स्यूडोमोनास स्ट्रिएटा, स्यूडोमोनास पुटीडा, बैसिलस पालीमीक्सा बैसिल्स सबटिलिस और बैसिलस सर्कुलान्स, ट्राई कैल्शियम फास्फेट की बेहतर विलेयक जीवाणु है। इसके अलावा एस्परजिलस नाइजा, एस्परजिलस अवामोरी और पेनिसिलियम जैसे फफूँद भी फास्फोरस विलेयन क्षमता रखते है फास्फोरस पौधों को वैसिकुलर अर्बुस्कुलर माइकोराइजा या अर्बुस्कुलर माइकोराइजा फफूंद के एक समूह द्वारा भी उपलब्ध करवाय जा सकता है।

पोटशियम विलेयक जैव उर्वरक –

पोटेशियम विलेयक बैक्टीरिया मृदा में उपस्थित अघुलनशील पोटेशियम को घुलनशील रूपो में परिवर्तित कर फसलों को उपलब्ध करवाते है। कई जीवाणु जैसे एसिडोथायो बैसिलस फेरोकिसडनस स्यूडोमोनास, बर्खोल्डेरिया, पेनिबैसिलस, बैसिलस मयूसिलेजीनोसस, फ्रेटूरिया अंरिसीया, बैसिलस एडाफिक्स और बैसिल्स सर्कुलान्स में पोटेशियम खनिजो (जैसे – बायोटाइट, फेल्डस्पार इलाइट मास्कोवाइट और आर्थोक्लेज को घुलनशील करने की क्षमता होती है।

जैव उर्वरक का उपयोग मुख्यतः बीज शोधन में किया जाता है बुआई से पहले तरल जैव उर्वरक की 5-10 मि0ली0 मात्रा प्रति किग्रा बीज दर से मिलाकर बीज को छाया में सुखाकर इसकी बुआई की जा सकती है।

संरक्षित खेती से सब्जी उत्पादन

गुरप्रीत सिंह भाटिया (सहायक प्राध्यापक)
आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

खुले वातावरण में अनेक प्रकार के जैविक व अजैविक कारकों द्वारा सब्जी फसलों को भारी नुकसान पहुँचता है। इसके कारण उनकी उत्पादकता एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है। इन जैविक कारकों में मुख्यतः विषाणु रोग, कीट व भूजनित, वायुजनित कवक, जीवाणु आदि शामिल है। अजैविक कारकों में तापमान, आद्रता एवं प्रकाश आदि प्रमुख है। इनकी अधिकता एवं अल्पता दोनों ही सब्जी फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता को सीधे तौर पर प्रभावित करती है।

संरक्षित खेती का मुख्य उद्देश्य सब्जी फसलों को मुख्य जैविक तथा अजैविक कारकों से बचाकर स्वच्छ एवं स्वस्थ उत्पदन करना है।

संरक्षित खेती को ग्रीनहाउस बागवानी के नाम से भी जाना जाता है। इस खेती में पॉलीहाउस, नेट हाउस या ग्लास हाउस जैसी नियंत्रित संरचनाओं के अंदर फसलों को उगाने की एक आधुनिक तकनीक है।

संरक्षित खेती के प्रमुख घटक

- ग्रीनहाउस / पॉलीहाउस : इसमें तापमान, आद्रता और प्रकाश को नियंत्रित किया जाता है।
  प्लास्टिक लो टनलः कम लागत वाली संरचना, जो मख्य रूप से बेमौसम सब्जी उत्पादन के लिये उपयोग होती है।
- नेट हाउस : कीटों से सुरक्षा के लिये जालीदार संरचना।
  मल्चिंग : मिट्टी की नमी बनाए रखने के लिये प्लास्टिक फिल्म का उपयोग।

तकनीकी उपाय

- फसल चक्रीकरण : मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने और रोगों से बचाव हेतु।
- जैविक एवं अजैविक उर्वरक : पौधों की पोषण आवश्यकताओं को संतुलित करने के लिये।
- ड्रिप सिंचाई एवं फर्टिगेशन : जल एवं पोषक तत्वों की सटीक आपूर्ति।
- कीट एवं रोग प्रबंधन : जैविक नियंत्रण, फेरोमोन ट्रैप और नेट हाउस से बचाव।

प्रमुख सब्यिजयाँ एवं किस्मे :

- टमाटर : अभिनव, अर्शी, NS-2535 हिमा, हीरा।
- शिमला मिर्च : इंड्रा, बिंद्रा, स्वाति, ओमकार बायो-ग्रीन
- खीरा : पूसा संप्रति, पूसा उत्कर्ष, ग्रीन फिंगर, जापानी लान्ग
- तरबूज : अरूण, सुधा, NS-295 मादुर, शुगर बेबी।
- खरबूजा : पूसा मधुरिमा, पूसा, रसायन हारमोनिया, कांतलूप

शेष भाग पृष्ठ संख्या 54 पर...

रासायनिक उर्वरकों का दुष्प्रभाव एवं सुधार के उपाय

डा. हृदय नारयण तिवारी एवं डा. धर्मेश कुमार सिंह
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग
चन्द्र भानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

यह ऐसा विषय है जो हमारे जीवन, हमारी मिट्टी, हमारे पर्यावरण और हमारे भविष्य सब से जुड़ा हुआ है। कृषि हमारे देश की आत्मा है हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या खेती से जुड़ी है। पहले के समय में किसान, गोबर, राख, पत्तों गौमूत्र एवं हरी खाद से भूमि को उपजाऊ बनाते थें। फसलें सुगन्धित और स्वादिष्ट होती थी और पर्यावरण शुद्ध था । लेकिन जस जब संख्या बढ़ी, खाद्य संकट गहराया तब ''हरित क्रान्ति'' आई और साथ आई रासायनिक उर्वरकों की बाढ़ । शुद्धआत में यह वरदान लगी–उत्पादन बढ़ा किसान, खुश हुए देश आत्म निर्भर हुआ । पर धीरे–धीरे यह वरदान एक ''विष का प्याला'' साबित होने लगा ।

1. मिट्टी की उर्वरता में गिरावट :

मिट्टी केवल रेत या कंकड़ का दरे नहीं है यह एक जीवित तंत्र है, जिसमें लाखों सूक्ष्मजीव, केचुएं, कवक, और वैक्टिरिया रहते हैं ये सभी मिलकर मिट्टी को जीवित और उपजाऊ बनाते हैं। मिट्टी में किसान भाई ज्यादातर प्रमुख रासायनिक उर्वरक यूरिया, डीएपी और पोटाश केवल तीन पोषक तत्व ही देते है। लेकिन मिट्टी को केवल तीन नहीं 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। जब हम बार–बार केवल NPK डालते है तो मिट्टी में अन्य पोषक तत्व जैसे – जिंक,आयरन, सल्फर, कॉपर आदि की कमी होने लगती है मिट्टी की संरचना बिगड़ जाती है,जैविक पदार्थ घटते हैं और मिट्टी की जल धारण क्षमता कम हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि किसान को हर साल और ज्यादा उर्वरक डालने पड़ते हैं – फिर भी उत्पादन घटता जाता है । मिट्टी बीमार हो जाती है । भारत के कई राज्यों जैसे – पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की मिट्टियाँ अब थकी हुई मिट्टी कही जाती है ।

1. यूरिया नाइट्रोजन का सबसे बड़ा स्रोत है यह पर्यावरण में कई रूपों में मौजूद रहता है यह मिट्टी, हवा और पानी से मिलकर आम सेहत एंव पर्यावरर्णीय परिस्थितिक तंत्र पर अपना प्रभाव डालता है। किसान जब अपने खेत में यूरिया डालता है। यही रासायिनक यूरिया नाइट्रेट के रूप मे मिट्टी में भूमिगत जल में पहुँच जाता है और जल को प्रदूषित करता है। जिसके कारण कैंसर जैसी गम्भीर बीमारी देखने को मिल रही है ।

2. जब यह यूरिया नदी, झीलों या समुद्र मे जाता है तो जलीय वनस्पति में वृद्धि करता है। इससे बाकी प्राणियों को आक्सीजन नहीं मिल पाता है इससे सबसे अधिक मछलियाँ प्रभावित होती है ।

3. रासायनिक उर्वरकों के अधिक प्रयोग से खेत की मिट्टी में अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है साथ ही जिंक एवं बोरान जैसे सूक्ष्म तत्वों की कमी हो जाती है इसका प्रभाव मिट्टी पर तो पड़ता ही है साथ ही मनुष्य के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

4. जिंक की लगातार कमी से फसल उत्पादन प्रभावित होता है वहीं लगातार कमी से मनुष्य में बाल झड़ने के साथ ही शरीर का विकास थम जाता है बच्चों में कुपोष्ण का कारण बनता है ।

5. फास्केट के अधिक प्रयोग से मिट्टी में यूरेनियम–238 की मौजूदगी बढ़ जाती है जो बाद में पानी एवं भोजन के साथ हमारे सरीर में पहुंच सकता है ।

2. जल प्रदूषण :

जब हम जरूरत से अधिक उर्वरक डालते हैं तो पौधें उसका पूरा उपयोग नहीं कर पाते बचा हुआ उर्वरक वर्षा के पानी के साथ बहकर नदियों, तालाबों और झीलों में पहुँच जाता है इससे नाइट्रेट और फॉस्टेट की मात्रा जल में बहुत बढ़ जाती है। इस क्रिया को Eutrophication (यूट्रोफिकेशन)'' कहा जाता है – जिससे जलीय स्रोतों में शैवाल (ALGAE) की अत्याधिक वृद्धि हो जाती है। शैवाल सूर्य की रोशनी को नीचे तक नहीं पहुंचने देते जिससे जलीय पौधे और मछलियाँ मरने लगती है इस प्रकार जल जीवन नष्ट हो जाता है। जब यह पानी पीने योग्य स्रोतों में पहुँता है। तो यह ब्लू बेबी सिंड्रोम, कैंसर और अन्य बीमारियों का कारण बनता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भू-जल में नाइट्रेट की मात्रा 45mg/l से अधिक नहीं होनी चाहिए लेकिन कई कृषि क्षेत्रों में यह उपरोक्त सीमा से अधिक पहुँच चुकी है ।

3. वायु प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन

नाइट्रोजन आधारित उर्वरकों जैसे – यूरिया से नाइट्रस आक्साइड (N_2O) गैस निकलती है । यह एक ग्रीन हाउस गैस है जो कार्बन डाइआक्साइड की तुलना मे लगभग 300 गुना अधिक गर्मी रोकने की क्षमता रखती है। यह गैस ओजोन परत को भी नुकसान पहुँचाती है इससे जलवायु परिवर्तन (Climate Change) और ग्लोबल वार्मिंग की समस्या बढ़ती है। आज मौसम का असंतुलन अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ मानवजनित असंतुलन का परिणाम है । यानी फसल की पैदावार बढ़ाने के लिए हम अपने आसमान को विषैला बना रहे हैं ।

4. मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

जब हम रायानिक उर्वरक से उगाई हुई सब्जियों, अनाज या फल खाते हैं, तो हम केवल भोजन नहीं-रसायन भी खेत हैं। ये रसायन हमारे शरीर में धीरे धीरे जमा होते हैं और कई गम्भीर बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं। नाईट्रेट रक्त में आक्सीजन वाहन करने की क्षमता को कम कर देता है। कैंसर किडनी, फेल्योर, पांचन तंत्र की समस्याऐं अब ग्रामीण इलाकों में तेजी से बढ़ रहें हैं। कई शोधों में यह भी बताया गया है कि अत्याधिक अवशेष गर्भवती महिलाओं और बच्चे पर गहरा अवसर डालते हैं।

5. फसलों की गुववत्ता में कमी

रासायनिक उर्वरक फसलों को तेजी से बड़ा तो करते हैं लेकिन उनका स्वाद रंग, और पोषकता घटा देते हैं आज की सब्जियां देखने में चमकदार लगती हैं। पर उनमें पहले जैसा स्वाद नहीं होता। आयुर्वेद के अनुसार भोजन तभी औषधि है। जब उसमें प्राण यानी जीवन हो लेकिन रासायनिक खेती से उगा भोजन निष्प्राण हो जाता है । अनुसंधान से यह पता चला है कि जैविक खेती से उगी फसलों में विटामिन सी आयरन और प्रोटीन की मात्राा अधिक होती है।

6. जैव विविधता पर प्रभाव

रासायनिक उर्वरक केवल फसलों को ही नहीं बल्कि मिट्टी और वातावरण के जीवों को भी प्रभावित करते हैं । मधुमक्खियों केंचुए और अन्य कीट जो फसल उत्पादन के लिए आवश्यक हैं – इस रसायनों से नष्ट हो रहें हैं । मधुमक्खियों की संख्या घटने का सबसे बड़ा कारण यही है। यदि मधुमक्खियाँ खत्म हो जाएँ, तो परागण नहीं होगा और बिना परागण के न फल होंगे न बीज, रासायनिक खेती केवल आज की फसलें ही नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ियों की फसलें भी छीन रही है ।

7. पर्यावरण असंतुलन

मिट्टी जल और वायु ये तीनों प्रकृति के सबसे महात्वपूर्ण घटक है। जब तीनों प्रदूषित हो जाय तो पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जाता है । यह असंतुलन पृथ्वी के तापमान वर्षा पैटर्न और परिस्थतिक की तंत्र को प्रभावित करता है । कई पक्षी प्रजातियाँ तितलियाँ और छोटे जीव जो खेती के लिए आवश्यक हैं अब गायब हो रहे हैं यह प्राकृतिक चक्र टूटना है जिसे ठीक करना हमारी जिम्मेदारी है ।

8. सुधार के उपाय

1. जैविक खेती (Organic Farming)

हमें फिर से प्रकृतिक की ओर लौटना होगा । गोबर खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट और हरी खाद का उपयोग बढ़ाना चाहिए। इससे मिट्टी की उर्वरता स्वाभाविक कप से बनी रहती है और पर्यावरण भी सुरिक्षत रहता है ।

2. मृदा परीक्षण (Soil Testing)

हर किसान को अपनी मिट्टी का परीक्षण कराना चाहिए ताकि यह पता चल सके किस पोषक तत्व की कमी है और कितनी मात्रा में खाद की आवश्यकता है।

3. संतुलित पोषक प्रबंधन (Balanced Nutrient Management)

जैविक और रासायनिक उर्वराकों का संतुलित उपयोग करें। इससे उत्पादन भी बना रहता है और मिट्टी की सेहत भी खराब नहीं होती ।

4. कृषि शिक्षा और प्रशिक्षण (Agricultre Education and Trainings)

किसानों को सही जानकारी देना आवश्यक है। कई बार किसान अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करते हैं क्योंकि उन्हें सही मात्रा का ज्ञान नहीं होता है ।

5. सरकारी योजनायें । (Government Schemes)

सरकार को जैविक खेती के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए जैसे। सब्सिडी, प्रशिक्षण और जैविक उत्पादों के लिए अलग बाजार ।

6. प्राकृतिक कीटनाशक (Natural Pesticidess)

नीम, लहसुन अदरक जैसे पौधों से बने कीटनाशक पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुंचाते ऐसे विकल्पों को बढ़ावा देना चाहिए ।

एक मास ऋतु आगे धावै।
आधा जेठ असाढ़ कहावै।।
(घाघ)

बाजरे के प्रमुख रोग एवं उनका एकीकृत प्रबन्धन

डा. योगेन्द्र कुमार सिंह (विभागाध्यक्ष) एवं डा0 आशुतोष श्रीवास्तव (सहायक प्रध्यापक)
(पादप रोग विज्ञान विभाग)
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

परिचय :

बाजरा एक महत्वपूर्ण खाद्यान्न एवं चारे की फसल है। यह भारत मे 11.34 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में बोया जाताहै, जिसका कुल उत्पादन 5.5 मिलियन टन है। भारत देश की 10 प्रतिशत जनसंख्या बाजरे को खाद्यान्न के रूप में प्रयोग करती है। बाजरे में अनेक प्रकार के कवक व जीवाणु जनित बीमारिया लगती है। यदि समय पर इन बीमारियों की पहचान कर ली जाये तो उनका उचित प्रबन्धन कर उत्पादन बढ़ाकर लाभ प्राप्त किया जा सकता है। प्रमुख बीमारियाँ निम्न प्रकार हैं:–

डाउनी मिलडिव एवं ग्रीन ईयर ऑफ बाजरा (हरित बाली रोग) :

रोग का संक्रमण सिस्टेमिक होता है तथा लक्षण पत्ती व पुष्पक्रम पर पाये जाते हैं। प्राथमिक अवस्था में रोग का लक्षण सीडलिंग पर पाया जाता है, जो ऊपरी पत्तियों के बनने पर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। प्रभावित पत्तियों पर धब्बे हल्के हरे रंग से हल्के पीले रंग के होते हैं जो कि पत्तियों की ऊपरी सतह पर बनते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर सफेद डाउनी ग्रोथ कवक की दिखाई देती है जिसमें स्पोरेजियोस्पोर बनते हैं। कभी–कभी पत्तियों पर पीला रंगहीन भाग धारियों के रूप में बदल जाता है। तथा शिरायें भी पीली पड़ ताजी हैं नये तरूण पौधे पर संक्रमण होने से पौधा मर जाता है। रोग का लक्षण टेलर्स तथा पार्श्वीय शाखाओं पर भी दिखाई देता है। पुष्पक्रम पर रोग का लक्षण पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से फ्लोरेट–पत्तियों जैसी संरचना में बदल जाते हैं जिनमें दाने नहीं बनते। नम दशाओं से रोगी पत्तियों तथा पुष्पक्रम पर स्पोर्स उत्पन्न होते है।

अनुकुल परिस्थितियाँ

सापेक्षिक आद्रता 90 प्रतिशत से अधिक व पत्तियों पर पानी की बूँदे जिससे संक्रमण की दरें बढ़ जाती हैं।

रोग चक्र

ऊस्पोर्स मृदा में कई वर्षो तक उत्तरजीवी रहते हैं अथवा कभी कभी अनुकूल मौसम होने पर इससे अधिक समय तक उत्तरजीवी रहते हैं जो कि पौधे में प्राथमिक संक्रमण के लिये जिम्मेदार होते हैं। रोगी बीज में कवक की माईसीलियम भ्रूणपोष में उपस्थित पाई जाती है।

प्रबन्धन :

1) गर्मी के दिनो में गहरी जुताई कर खेत को खाली छोड़ना चाहिये, जिससे उच्चतापमान के कारण सूक्ष्म जीव मर जाते हैं।
2) रोगी पौधे को निकालकर जलाकर नष्ट कर दें।

3) फस्लचक्र अपनाकर (5 वर्ष का)
4) नाईट्रोजन युक्त उर्वरकों को संतुलित मात्रा में प्रयोग करना।
5) मोनोकल्ल्चर को प्रतिबंधित करना।
6) रोगी पादप अवशेषों की सफाई करना।
7) मेटालैक्सिल के साथ बीज उपचार करना।
8) पर्णीय छिड़काव – मैंकोजेब की 02 ग्राम दवा/किलोग्राम की दर से, करें।
9) रोग प्रतिराधी प्रजातियों में,पूसा-23 की बुवाई करें।

2. बाजरे का कण्डुआ रोग

लक्षण – रोगकारक पुष्पक्रम से कुछ फ्लोरेट को संक्रमित करते हैं तथा बाल पर स्मट सोराई बनते हैं जोकि परिपक्व होने पर गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं स्मट सोराई के टूटने पर काले रंग के स्पोर्स दानों को ढक लेते हैं जिससे गुणवत्ता प्रभावित होती है।

रोग कारक : Tolyposporium Penicliiariae

प्रबन्धन :

- रोगी बीजों को पृथक करके अगली फसल में बुवाई करना चाहिए।
- 10 प्रतिशत साधारण नमक के घोल में बीज उपचारित करें।
- रोगी बीजों को अलग कर देना चाहिये।
- रोगी – दानों/इयर हेड निकाल कर नष्ट कर देना चाहिये।
- कवकनाशी जैसे मेंकोजेब के साथ बीज का उपचार एवं पर्णीय छिड़काव करना चाहिये।

बाजरे का अर्गट रोग

लक्षण – प्रारम्भ में रोग का मुख्य लक्षण स्कलेरोशियम से Light Pinkish अथवा Honey dew की छोटी छोटी बूँदों के रूप में रिसाव होते है। कई प्राकर के संक्रमण में देखा गया है कि रिसाव Ear Head के साथ लगा रहता है। इस शहद जैसे चिपचिपे पदार्थ पर कई प्राकर के कीट हमला करते हैं। गहरे भूरे रंग के दाने स्कलेरोशियम में बदल लजाते हैं और बीज के साथ मिलकर अगली फसल में संक्रमण का कारण बनते हैं।

प्रबन्धन :

- फसल बोवाई का सही समय इस प्रकार व्यस्थित करे कि सितम्बर माह में पुष्पन न हो। अधिक वर्षा उच्च सापेक्षिक आर्दता के कारण रोग अधिक फैलता है।
- 10 प्रतिशत साधारण नमक के पानी से बीज उपचारित करके बोना चाहिए। उक्त उपचार से संक्रमित बीज पानी के ऊपर तैरते है जिसे इकट्ठा करके जला देना चाहिए।
- पुष्प खिलने के समय स्प्रे व सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

- रोगी बीजों को अलग कर देना चाहिये।
- रोगी – Ear Head निकाल कर नष्ट कर देना चाहिये।
- कवकनाशी जैसे Zenab के साथ बीज का उपचार एवं पर्णीय छिड़काव करना चाहिये।
- Macnozeb अथवा 2 ग्राम बवस्टिन/ली0 पानी में मिलाकर पत्तियों के ऊपर स्प्रे करे।

रस्ट ऑफ बाजरा / रेतुआ रोग

लक्षण – रोग का प्रारम्भिक लक्षण प्रायः भाग ऊपरी भाग पहले प्रभावित होता है। यूरिडोसोराई का लक्षण पत्ती की ऊपरी सतह पर कवक के द्वारा ढका हुआ दिखाई देता है।

रोग के धब्बे लीफ शीथ, तने तथा पुष्पवृन्त पर दिखाई देते है। पत्तियों के किनारे तथा तने पर टीलिया बाद मे उत्पन्न होते है जोकि गहरे रंग में इपीडर्मिस की सतह को लम्बी अवधि के बाद ढक पाते हैं।

प्रबन्धन

- घुलनशील गन्धक 3 ग्राम कार्बाक्सिन की 2 ग्राम दवा/ली0 पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- रतुआ रोग के प्रति प्रतिरोधी या सहनशील किस्मों का उपयोग सबसे प्रभावशाली तरीका है।
- एक ही खेत में बाजरा न उगायें तथा 4–5 वर्षो का फसल चक्र अपनायें।
- बुवाई से पहले बीजों को उचित कवकनाशी से उपचारित करें।
- रोग के लक्षण दिखते ही मैन्कोज़ेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। कॉपर अक्सीक्लोराइड का छिड़काव भी प्रभावी है। 10–15 दिनों के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार 2–3 छिड़काव किये जा सकते हैं।

चुनौतियाँ

- प्रारंभिक निवेश अधिक होता है।
- संरचनाओं का रख–रखाव आवश्यक है।
- बिजली और तकनीकी ज्ञान की उपलब्धता जरूरी है।
- छोटे किसानों के लिये सरकारी सहायता और प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

संरक्षित खेती सब्जी उत्पादन की एक वैज्ञानिक और आधुनिक विधि है, जो किसानों को अधिक उत्पादन बेहतर गुणवत्ता और स्थायी आय प्रदान करती है। यदि सरकार और कृषि संस्थान किसानों को प्रशिक्षण वित्तीय सहायता और तकनीकी मार्गदर्शन दें तो यह तकनीक ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

।। ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमिता और कौशल विकास ।।

डा. प्रमोद कुमार मिश्र
(कृषि अर्थशास्त्र विभाग)
चन्द्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

'' भारत गाँवों का देश है और इसकी आत्मा गाँवों में निवास करती है। '' महात्मा गाँधी का यह कथन आज भी प्रासंगिक है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी कहते है – ''भारत की ताकत उनके गाँवों में हैं। हमारा लक्ष्य ग्रामीण और शहरी भारत के बीच की खाई को खत्म करना है। देश की आबादी का 68.8 प्रतिशत और कार्यबल का 72.4 प्रतिशत हिस्सा गाँवों में निवास करता है (जनगणना 2011) के लिहाज से ग्रामीण भारत को मानव पूँजी के विशाल भंडार के तौर पर देखा जा सकता है ।

इसलिए आकांक्षी भारत की अर्थव्यवस्था को प्राप्त करने के लिए जरूरी है कि उद्यमिता और कौशल को प्रोत्साहित किया जाए ।इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं और समुदायों का सर्वांगीण विकास, गरीबी उन्मूलन, गाँवों और शहरों के बीच की खाई को खत्म करना तथा सत्त विकास लक्ष्यों की प्राप्ति ग्रामीण आजीविका और सबके लिए समुचित रोज़गार से सीधे तौर पर जुड़ी है ।

उद्यमिता और कौशल विकास की प्रक्रिया द्वारा विचारों को नवाचार के माध्यम से अर्थिक अवसरों पर रूपान्तरित किया जाता है । इसलिए उद्यमिता को सदैव किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास से जोड़कर देखा जा सकता है। यहाँ यह भी समझना अति आवश्यक है कि उद्यमिता व नवाचार को सफल बनाने हेतु कौशल व ज्ञान का होना नितांत आवश्यक है

अतः उद्यमिता, कौशल और ज्ञान किसी भी राष्ट्र की आर्थिक उन्नति और सामाजिक विकास के महत्वूपर्ण कारकों में से एक होते हैं । अगर हम बात करें भारतीय अर्थव्यवस्था की जो, वर्तमान में लगभग तीन खरब लाख अमेरिकी डॉलर अनुमानित की जा रही है । और भारतीय आर्थिक समीक्षा 2018–19 में इसे वर्ष 2025 तक 5 अरब अमेरिकी डालर का आकार लेने की आकांक्षा के बारे में उल्लेख किया जाता है। क्या भारतीय अर्थव्यवस्था वर्ष 2025 तक 5 अरब डालर का आकार ले पायेगी ? इस प्रश्न का उत्तर तो आने वाले वर्षो में ही मिलेगा। परंन्तु यहाँ महत्वपूर्ण बात है देश में आर्थिक गतिविधिया में निरन्तर वृद्धि तथा विकसित होते हुए वाणिज्य, उद्योग व व्यापार के अवसर जो किसी भी देश के सामाजिक उवं आर्थिक विकास में अत्यन्त सहायक होते हैं

इसके अलावा इसमें उद्यमिता कौशल विकास, कुशल मानव–संसाधन, अंतर्राष्ट्रीयस्तर की तकनीकी ज्ञान व नवाचार जैसे महात्वपूर्ण तत्वों की आवश्यकता होगी। चूँकि ये विभिन्न प्रकार के उद्योग व्यवसाय और व्यापार ही है जो आज के आकांक्षी भारत इस दिशा में अग्रसर करने में मुख्य्य भूमिका निभा रहे है । या यू भी कहाँ जा सकता है कि भारत जैसे अनेकता में एकता वाले देश में आर्थिक विकास द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया में उद्यमिता और कौशल विकास की अहम भूमिका है ।

उद्यमिता – कौशल विकास – कुशल एवं दक्ष मानव संसाधन विकास – अर्थिक एवं सामाजिक विकास – अर्थिक गतिविधियों में योगदान से उन्हें सम्माननीय आजीविका प्रदान करना है । ग्रामीण क्षेत्र में उद्यमिता और कौशल विकास की देश की अर्थव्यवस्था में भूमिका ः–

1. ग्रामीण एवं शहरी दोनो क्षेत्रों में विभिन्न सामाजिक समस्याओं जैसे गरीबी, भुखमारी व बेरोजगारी इत्यादि उन्मूलन में सहायक
2. आर्थिक गतिविधियों द्वारा जनसामान्य के जीवन में सकारात्मक परिर्वतन व राष्ट्र निर्माण में योगदान
3. युवाओं को रचनात्मक, सृजनात्मक, गतिविधियों द्वारा अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर 4. देश में कुशल एवं दक्ष मानव संसाधन विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान
5. नवाचार को बढ़ावा देकर लोगों के जीवन-स्तर में सकारातमक रूप से प्रभावित करने में सहायक
6. ग्रामीण क्षेत्रों मे औद्योगिक व व्यावसायिक वातावरण तैयार कर नवयुवाओं को आत्मनिर्भर बनने हेतु प्रोत्साहित करना ।
7. जनसामान्य विशेषकर ग्रामीणों में उद्यमिता के प्रति सकारात्मक नजरिया विकसित कर उन्हें जोखिम लेकर स्वयं के उद्यम हेतु प्रोत्साहत करना ।
8. विभिन्न प्रकार की अवाछित सामाजिक बुराइयों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका ।

भारत में उद्यमिता और कौशल विकास की दिशा में नीतिगत प्रयास :-

नीतिगत प्रयास : भारतीय इतिहास को समझने पर यह साफतौर पर देखा जा सकता है कि गाँवों में बसने वाला भारत सदैव विभिन्न प्रकार के उद्योगों, व्यवसायों एवं वाणिज्यिक गतिविधियों से परिपूर्ण रहा है । इन सभी गतिविधियों के केन्द्र बिन्दु में सदैव उत्कृष्ट कौशल या कारीगरी को निश्चित रूप से देखा जा सकता है । अंग्रेजों का सोने की चिड़ियां या भारत में लगभग 200 वर्ष के शासनकाल के प्रमुख कारणों में से एक यहाँ उद्यमिता संसाधन व बेहतर बाजार के अवसर रहे है। भारत में उद्यमिता और कौशल विकास को बढ़ावा देने की दिशा में समय-समय पर आवश्यक प्रयास किए गए है ।

-राष्ट्रीय कौशल विकास नीति - 2009
-राष्ट्रीय कौशल विकास एवं उद्यमिता नीति - 2015
-अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् की स्टार्टअप नीति - 2016
-स्टार्टअप इंडिया - 16 जनवरी 2016
- स्टैंडअप इण्डिया - 10 लाख से 1 करोड़ बैंक ऋण सुविधा
- प्रधानमंत्री मुद्रा योजना - 8 अप्रैल 2015 को शुरू किया गया ।
- अटल इनोवेशन मिशन- इनक्यूबेशन सेंटर
- प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना - 2015-16 (1 करोड़ युवाओं को 2 से 6 महीने तक निशुल्क प्रशिक्षण प्रदान करना)
दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना - 15 से 35 वर्ष तक के ग्रामीण युवाओं से समर्पित योजना है ।

उद्यमिता प्रयासों के माध्यम से ग्रामीणों में उद्यमिता और कौशल विकास को किसी भी देश के आर्थिक और सामाजिक विकास हेतु रीढ़ की हड्डी के रूप में देखा जा सकता है। भारत में उद्योग, व्यवसाय और वाणिज्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहन देने

पॉलीहाउस में खेती

इं. विपुल अग्रवाल एवं श्रीमति प्रतिमा सिंह
सहायक प्राध्यापक
चन्द्र भानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

पॉलीहाउस एक विशेष प्रकार का ग्रीनहाउस है जिसे जी.आई. स्टील फ्रेम से बनाया जाता है और यू वी-स्थिर पॉलीथीन शीट (आमतौर पर 200 माइक्रोन) से ढका जाता है ताकि पूरे वर्ष फसल की खेती के लिए नियंत्रित, गर्म जलवायु बनाई जा सके। यह उपज बढ़ाता है पौधों को खराब मौसम और कीटों से बचाता है।

उत्तर प्रदेश में पॉली हाउस कई महत्त्वपूर्ण लाभ प्रदान करते हैं, जैसे कि नियंत्रित वातावरण बनाना जो फसलों को भीषण गर्मी, भारी बारिश और कीटों के प्रकोप से बचाता है। ये खीरा,टमाटर और शिमला मिर्च जैसी उच्च मूल्य वाली फसलों की साल भर खेती करने में सदाम बनाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप 3-4 गुना अधिक पैदावार और बेहतर गुणवत्ता वाली उपज प्राप्त होती है। इसके अलावा ड्रिप सिचाई के माध्यम से ये पानी की खपत को 50-70% तक कम करते है और मौसम की परवाह किए बिना निरंतर आय सुनिश्चित करते हैं।

पॉलीहाउस खेती अपनाने के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

- **जलवायु के प्रति लचीलापन और संरक्षण :** ये संरचनाएं फसलों को उत्तर प्रदेश में आम तौर पर पाई जाने वाली भारी बारिश, ओलावृष्टि और तीव्र, गर्म हवाओं (लू) जैसी अप्रत्याशि मौसम स्थितियों से बचाती हैं, जिससे फसलों को होने वाले नुकसान में काफी कमी होती है ।
- **साल भर खेती और अधिक आयः** किसान विदेशी सब्जियां, फल और फूल साल भर उगा सकते हैं न कि केवल उनके विशिष्ट मौसमों में। इससे और अधिक पैदावार के साथ, लाभप्रदता बढ़ती है जिससे कुछ किसान प्रति एकड़ डालाना 8-12 लाख रूपये तक का लाभ कमा सकते हैं ।

  बेहतर फसल गुणवत्ता : - नियंत्रित तापमान, आर्द्रता और प्रकाश स्तर उच्च गुणवत्ता वाली, कीट-प्रतिरोधी सब्जियां और फल पैदा करते हैं जो बाजार मानकों को पूरा करते हैं ।
- **संसाधन दक्षता :** पॉलीहाउस उन्नत ड्रिप सिंचाई और उर्वरक विधियों का उपयोग करते हैं जिससे पानी की ब र्बादी 60-70ः तक कम हो जाती है और कुशल पोषक तत्व प्रबंधन सुनिश्चित होता है।

पॉलीहास बनाम खुले मैदान में खेती की तुलना

- **पैदावार और गुणवत्ता :** पॉलीहाउस में टमाटर और शिमला मिर्च जैसी फसलों की पैदावार 1.5 से 2 गुना अधिक होती है , और बेहतर गुणवत्ता के कारण बाजार में बेहतर कीमत मिलती है ।
- **पर्यावरण नियंत्रण :** पॉलीहाउस तापमान और आर्द्रता को नियंत्रित करने की अनुमति देते है, जिससे खराब मौसम से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है और उदाहरण के लिए , मिट्टी का तापमान 2-3 डिग्री सेल्सियस अधिक बनाए रखा जा सकता है । जिससे विकास में तेजी आती है ।
- **संसाधन दक्षता :** पॉलीहाउस प्रणालियां अक्सर ड्रिप सिंचाई का उपयोग करती है, जिससे पारंपरिक, कम कुशल, खुले मैदान की विधियों की तुलना में पानी की खपत 60-70 % तक कम हो जाती है ।

- **लागत और निवेश :** तकनीक के आधार पर, पॉलीहाउस सेटअप की लागत कम लागत वाले के लिए रु400 प्रति वर्ग मीटर से लेकर उच्च तकनीक वाले के लिए रु 4000 प्रति वर्ग मीटर तक होती है, जबकि खुले मैदान में बुनियादी ढांचे की लागत नगण्य होती है या लगभग न के बराबर होती है।
- **लाभप्रदताः** शुरुआती, रखरखाव और संभावित श्रम लागत अधिक होने के बावजूद, पॉलीहाउस में उच्च मूल्य वाले, ऑफ-सीजन और बेहतर गुणवत्ता वाले उत्पादों के परिणामस्वरूप लाभ-लागत अनुपात अधिक होता है। (2.84 तक)।

सब्सिडी संबंधी विवरणः

उत्तर प्रदेश में, किसान राष्ट्रीय बागवानी मिशन(एनएचएम) और राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड(एनएचबी) जैसी केंद्रीय योजनाओं के तहत पॉलीहाउस के लिए पर्याप्त सब्सिडी प्राप्त कर सकते, जो अक्सर परियोजना लागत का 50% तक होती है। इन योजनाओं को राज्य की उन पहलों का समर्थन प्राप्त है जिनका उद्देश्य सब्जियों और फूलों जैसी उच्च मूल्य वाली फसलों की संरक्षित खेती को बढ़ावा देना है। ये सब्सिडी ग्रीनहाउस स्थापित करने की लागत को कवर करने में मदद करती है, जिससे ऑफ-सीजन खेती और बेहतर पैदावार संभव हो पाती है, और इसके विस्तृज मानदंड राज्य के बागवानी विभाग के माध्यम से उपलब्ध हैं।

एनएचबी के दिशानिर्देशों के अनुसार,पॉलीहाउस / ग्रीनहाउस निर्माण के लिए परियोजना लागत का आमतौर पर 50% हिस्सा खर्च किया जाता है, जिसमें प्रत्येक परियोजना के लिए विशिष्ट सीमाएं निर्धारित होती है (उदाहरण के लिए, बड़ी परियोजनाओं के लिए रु 56 लाख तक)।

- प्राकृतिक रूप से हवादार पॉलीहाउस (मानक): लगभग रु 1200 प्रति वर्ग मीटर (50% सब्सिडी उपलब्ध)।
- फैन और पैड सिस्टम (हाई-टेक): लगभग रु 1850 प्रति वर्ग मीटर (50% सब्सिडी उपलब्ध)।
- कुल परियोजना लागत (1 एकड़): आमतौर पर रु 32 लाख से रु 85 लाख तक होती है।
- सब्सिडी संरचनाः परियोजना लागत पर 50% सब्सिडी राज्य सरकार द्वारा प्रदान की जाती है, जिसमें संरचनाएं, पॉली फिल्म और सिंचाई शामिल हैं।
- पात्रताः किसान 500 से 2500 वर्ग मीटर तक के निर्माण क्षेत्रों के लिए सब्सिडी के लिए आवेदन कर सकते है।

उत्तम खेती मध्यम बान।
निखिद चाकरी भीख निदान
(घाघ)

ग्रामीण महिला शक्तिकरण में नाबार्ड की भूमिका

डॉ रश्मि पांडेय
सहायक प्राध्यापक
(वाणिज्य विभाग)
चन्द्र भानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय बक्शी का तालाब, लखनऊ – 226201

ग्रामीण महिला सशक्तिकरण में नाबार्ड की भूमिका

नाबार्ड राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक ग्रामीण भारत में महिलाओं के सामाजिक आर्थिक सशक्तीकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्वयं सहायता समूहों (SHG) के माध्यम से वित्तीय समावेशन कौशल विकास प्रशिक्षण (MEDP/LEDP), और विपणन सहायत प्रदान करके, नाबार्ड महिलाओं को आत्मनिर्भर बना रहा है। ये पहल ग्रामीण महिलाओं को उद्यमी बनाकर उनके जीवन स्तर में सुधार कर रही हैं।

महिला सशक्तिकरण में नाबार्ड की मुख्य भूमिका :

स्वयं सहायता समूह (SHG-Bank Linkage) : नाबार्ड ग्रामीण महिलाओं को SHG में संगठित कर उनहें सूक्ष्म ऋण उपलब्ध कराता है जिससे वे बचत करने और छोटे व्यवसाय शुरू करने के लिए प्रोत्साहित होती है।

कौशल विकास (Skill Development) : माइक्रो एंटरप्राइज डेवलमेंट प्रोग्राम (MEDP) और लाइवलीहुड एंटरप्राइज डेवलपमें प्रोग्राम (LEDP) के तहत महिलाओं को सिलाई, जूट बैग निर्माण, फूड प्रोसेसिंग, हस्तशिल्प और मशरूम उत्पादन जैसे कौशल सिखाए जाते हैं, जिससे उन्हे रोजगार मिल सके।

वित्तीय सहायता और ऋण : नाबार्ड महिला उद्यमियों को कम ब्याज दर पर ऋण दिलाने में ममद करता है ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें।

विपणन सहायता (Marketing Support) : ग्रामीण महिलाओं द्वार उत्पादित वस्तुओं को बेचने के लिए नाबार्ड 'ग्राम दुकान' और विभिन्न मेलों जैसे ग्रामीण भारत महोत्सव के माध्यम से बाजार उपलब्ध कराता है। जिससे उन्हें उनके उत्पादों का सही दाम मिले

वित्तीय साक्षरता : नाबार्ड ग्रामीण महिलाओं को डिजिटल बैंकिंग और वित्तीय साक्षरता के प्रति जागरूक बनाता है।

नाबार्ड की ये पहले न केवल ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बना रही हैं, बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी को भी बढ़ा रही है। नाबार्ड के इन प्रयासों से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता मिल रही है और महिलाओं के जीवन में एक बड़ा बदलाव आ रहा है।